शुद्धि आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास
सन् 712 से 1947 तक

लेखक

डॉ. श्रीरंग गोडबोले

प्रकाशक

अखिल भारतीय संस्कृति समन्वय संस्थान

बी–19, मधुकर भवन, न्यू कॉलोनी, जयपुर–302001

दूरभाष : 0141-4038590

शुद्धि आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास
सन् 712 से 1947 तक

ISBN : 978-81-937305-4-6

- प्रकाशन वर्ष : प्रथम संस्करण, विक्रम संवत् 2075 (वर्ष 2018)
- सहयोग राशि : 40/-
- मुख पृष्ठ सज्जा : सुरेन्द्र चतुर्वेदी
- अक्षर संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर
- मुद्रक : पॉयोराईट प्रिन्ट मीडिया, उदयपुर
- प्रकाशक : **अखिल भारतीय संस्कृति समन्वय संस्थान**

धर्मरक्षा एवं शुद्धि के कार्य में अपने प्राणों की आहुति देने वाले अमर हुतात्माओं को यह पुस्तक समर्पित है।
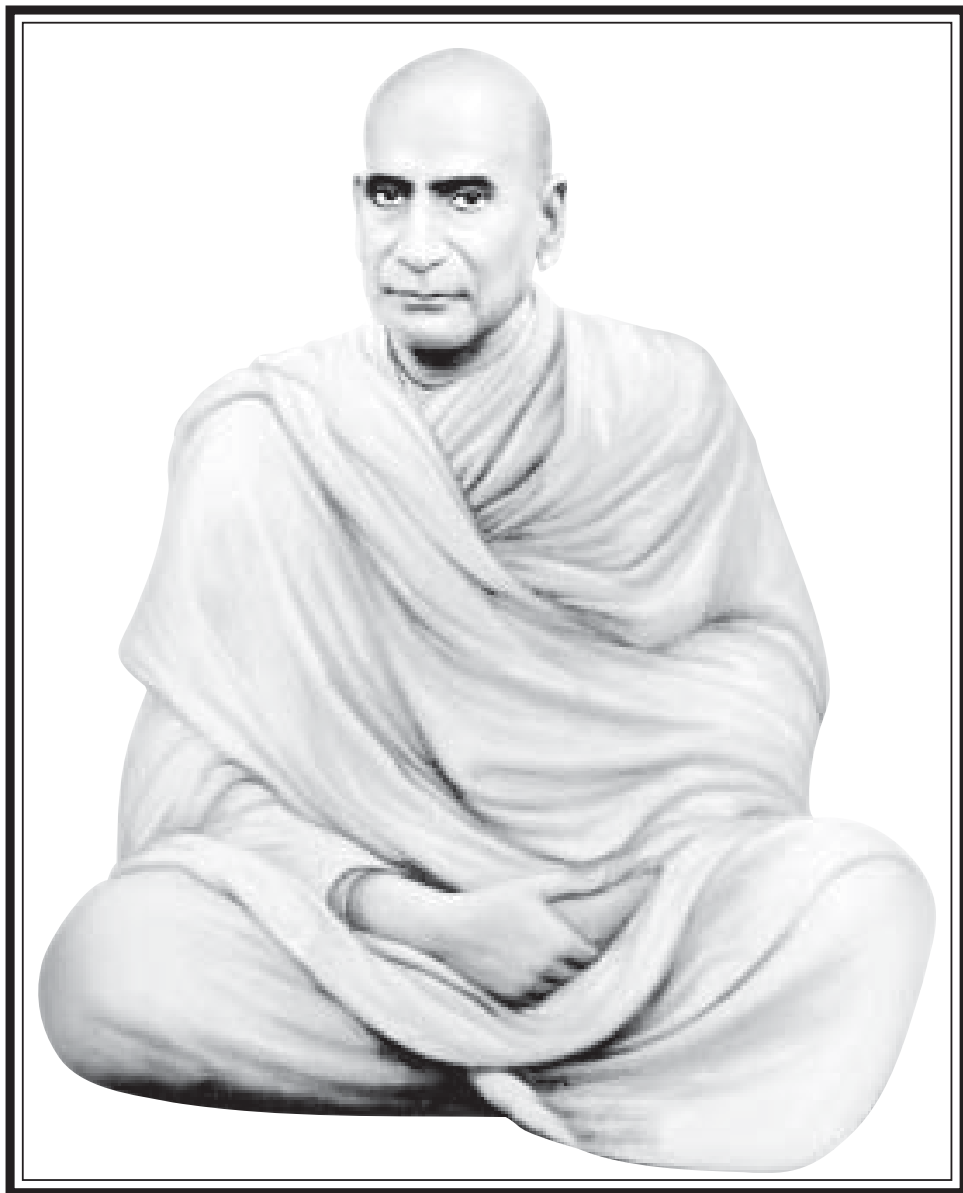
स्वामी श्रद्धानन्द जी

स्वामी लक्ष्मणानंद जी

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन

अन्य उपासना-मतों में, विशेषकर इस्लाम एवं ईसाइयत में मतान्तरित हिन्दुओं का अपने मूल धर्म और समाज में वापस आने की प्रक्रिया 'घरवापसी' नाम से लोकप्रिय हुई है। इस प्रक्रिया को 'शुद्धि' या 'परावर्तन' भी कहा जाता है।

भारत में रहने वाले अधिकांश मुस्लिमों और ईसाइयों के पूर्वज हिन्दू ही थे। किसी समय भय या धोखे से उन्हें मतान्तरित किया गया था। भारत के वर्तमान मुस्लिम और ईसाई इतिहासकाल में बिछुड़े हुए अपने ही बंधुओं की संतान हैं। मतान्तरण यह दासता का आविष्कार है। मतान्तरित व्यक्ति और समाज उस इतिहासकालीन दासता के अवशेष हैं। राजनीतिक स्वतंत्रता तो हमने प्राप्त की लेकिन क्या उपासना के विषय में अपने सभी बंधू स्वतंत्र हैं? अपने परंपरागत स्वगृह में लौटने पर ही वे दासता की श्रृंखलाओं से मुक्त हुए ऐसा कहा जा सकता है। आज भी मतान्तरण चिंता का विषय बना हुआ है। हिन्दू समाज को पुनः दास बनाने की इच्छा रखने वाले आज भी मतान्तरण का धंधा चला रहे हैं।

जिस समाज के घटक शत्रु-पक्ष के अधीन होते हैं, उस समाज को अपनी भूमि, संस्कृति, स्वतंत्रता सब कुछ खोना पड़ता है। मतान्तरण और दासता का यह परस्पर सम्बन्ध अपने पुरखों ने भली-भांति समझा था। इसलिए मतान्तरित बंधुओं को स्वगृह में लाने और उन्हें मातृसमाज में आत्मसात करने का प्रयास अपने यहाँ सैकड़ों वर्षों से हो रहा है। अपने ऋषि-मनीषियों ने इस प्रक्रिया को धर्मशास्त्र का आधार दिया। किसी कारण अपवित्र जीवन व्यतीत करने वालों को शुद्ध करने का प्रावधान हिन्दू धर्मशास्त्रों में प्राचीन काल से है।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।

उतागश्चकृ षं देवा देवा जीवयथा पुनः।।

(भावार्थ- जो मनुष्य सत्य धर्म से गिर गए हैं, उनको पुनः उठाओ और जिन्होंने पापकृत्य किया है अथवा जिनका जीवन अपवित्र हो गया है, उनको फिर से शुद्ध करके पवित्र जीवन दो) यह ऋग्वेद (10 /137/1) की घोषणा है।

अपने बिछुड़े हुए बंधुओं को आत्मसात करने के प्रयास ऋषियों, साधु-संतों, राजा-महाराजाओं, धार्मिक-सामाजिक-राजनीतिक नेताओं और सामान्य लोगों ने किए। धर्म और समाज की रक्षा का उनका प्रखर भाव ही अनेक विपदाओं पर विजय प्राप्त कर सका।

यह विडम्बना है कि धर्म-रक्षा के इस भाव का विपरीत अर्थ भी लिया गया। **'त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्। ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥'** (चाणक्य नीति, अध्याय 3.11; भावार्थ- कुल के हितार्थ एक का त्याग करना, गाँव के हितार्थ कुल का, देश के हितार्थ गाँव का और आत्म-कल्याण के लिए पृथ्वी का त्याग करना चाहिए) इस भाव से हिन्दू समाज के एक बड़े वर्ग ने आत्मसातीकरण का विरोध किया। आज भी स्वगृह आने वाले बंधुओं को पूर्ण रूप से स्वजाति में आत्मसात करने, उनसे विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए हिन्दू समाज का बड़ा वर्ग उत्सुक नहीं। गत कालखण्ड में यह विरोध धर्म-रक्षा के विपरीत अर्थ से भले ही उत्पन्न हुआ होगा, आज ऐसे विरोध का बिल्कुल औचित्य नहीं।

जिस एकात्म भाव से समूचा हिन्दू समाज अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए उठ खड़ा हुआ, उसी एकजुटता से अपने बंधुओं को दासता की श्रृंखलाओं से छुड़वाने के लिए पूरे समाज को खड़ा होना पड़ेगा। समय की इस माँग को ध्यान में रखते हुए घरवापसी या शुद्धि की प्राचीन एवं तेजस्वी परंपरा की तथ्यपरक जानकारी देना इस पुस्तक का उद्देश्य है। यद्यपि 'घरवापसी' यह शब्द आज प्रचलित और अधिक यथोचित है, इस पुस्तक में वर्णित कालखंड को ध्यान में रखते हुए 'शुद्धि' या 'शुद्धिकरण' ये शब्द प्रयुक्त किए गए हैं।

इस पुस्तक के निर्माण में कई व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त हुआ। स्व. मुकुंद राव पणशीकर और शरद राव ढोले ने यह पुस्तक लिखने के लिए मुझे सदैव प्रोत्साहित किया। छत्रपति शिवाजी महाराज की जीवनी के विद्वान अध्येता गजानन भास्कर मेहेंदले ने पुस्तक की पाण्डुलिपि को पढ़ा। मेरी हिंदी की त्रुटियाँ दूर करने का काम डॉ. विनोद कुमार शर्मा ने किया। निम्न व्यक्तियों ने सन्दर्भ-ग्रन्थ या अन्य जानकारी दी - स्व. डॉ. अरविन्द गोडबोले, स्व. डॉ. नारायण कृष्णाजी भिड़े, स्व. संजय आर्य, डॉ. कृष्ण गोपाल, शरद राव ढोले, सुरेश चंद्र, गजानन भास्कर मेहेंदले, निवेदिता भिड़े, पं. धर्मवीर, शशिकांत देवदत्त तथा भाऊ राव क्षीरसागर, विश्वास राव ताम्हनकर, अरुण कांत, हनुमान सिंह, डॉ. दामोदर नेने तथा दादूमियाँ, इयेन कोपलैंड, शरद मेहेंदले, विनय

जोशी, भूषण दामले, हेमंत हरहरे, प्रतीक जावनपुरिया, जतिन कुमार सार्थक, चंद्रशेखर साने, अक्षय जोग, अनुरूपा सिनार, प्रदीप रावत, त्रिलोक चंद्र खत्री, प्रदीप पवार, रमेश जाधव, दीपक खैरे। भंडारकर प्राच्य-विद्या संशोधन मंदिर, पुणे के ग्रन्थपाल और अन्य कर्मियों ने मुझे तत्परता से अनेक सन्दर्भ-ग्रन्थ उपलब्ध कराए। पुस्तक के मुद्रण और प्रकाशन का दायित्व रामप्रसाद जी, डॉ. गोपाल शरण गुप्ता, रामस्वरूप अग्रवाल तथा अ. भा. संस्कृति समन्वय संस्थान के अन्य बंधुओं ने उठाया। सुरेन्द्र चतुर्वेदी ने मुखपृष्ठ तैयार किया एवं टंकण संबंधित कार्य में दिलीप भाटिया ने सहयोग दिया।

इस पुस्तक को पढ़कर घरवापसी के कार्य को सशक्त एवं गतिशील बनाने में पाठकों का सहयोग मिल जाय तो मेरा यह लेखन-प्रयास सार्थक होगा।

डॉ. श्रीरंग गोडबोले

पुणे

भाद्रपद कृष्ण दशमी, बुधवार वि.सं. 2075, युगाब्द 5120
05 सितम्बर, 2018

शुद्धि का धर्मशास्त्रीय आधार तथा तदनुरूप प्राचीन व्यवहार

प्राचीन काल से अपने यहाँ खान-पान और रहन-सहन के सम्बन्ध में शुचि-अशुचि या शुद्धि-अशुद्धि का विचार किया गया है। धर्मशास्त्रों द्वारा निर्धारित नियमों का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति भ्रष्ट माना जाता था। प्रायश्चित करके उसे स्वधर्म और स्वजाति में पुनः प्रवेश देने का प्रावधान था। इसी संस्कार को शुद्धि-संस्कार कहा जाता था। 'शुद्धि' इस शब्द का शाब्दिक अर्थ है पवित्रीकरण। लेकिन उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में यह शब्द विशेष अर्थ से प्रचलित हुआ। हिन्दू धर्म में पुनः या प्रथमतः प्रविष्ट होने तथा प्रविष्ट कराने को 'शुद्धि' या 'परावर्तन' (अर्थात् वापस आना) कहा जाता है। प्रारम्भ में, दलित जातियों के स्तर को उन्नत बनाने अर्थात् यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार उन्हें प्रदान करने या कथित अछूतों को स्पृश्य बनाने के लिए भी 'शुद्धि' शब्द का प्रयोग होता था। सन् 1925 में 'दयानंद दलितोद्धार मंडल' की स्थापना हुई। पूर्व-अछूतों को मुस्लिम, ईसाई जैसे अन्य मतावलंबियों से अलग करने के लिए उनके सम्बन्ध में अलग शब्द (दलितोद्धार) का प्रयोग होने लगा। 'शुद्धि' यह शब्द अन्य मतावलंबियों तक सीमित हो गया। मतान्तरित हिन्दुओं के हिन्दू धर्म में पुनः प्रवेश को वर्तमान में 'घर वापसी' भी कहा जाता है।

शुद्धि की अवधारणा एवं व्यवहार के सम्बन्ध में हिन्दू धर्मशास्त्रों में सुदीर्घ विवेचन है। वैदिक संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, धर्मसूत्र, स्मृति ग्रन्थ, धर्मशास्त्रीय निबन्ध ग्रन्थ, भाष्य एवं टीकाएँ इस विषय से ओतप्रोत हैं। शुद्धि की अवधारणा का उद्भव अशौच, पातक और प्रायश्चित के सिद्धांतों से हुआ है। इनके बारे में विस्तृत विवेचन इस पुस्तक की परिधि से बाहर है। किन्तु शुद्धि से सम्बन्धित कुछ मुख्य बिन्दुओं का विचार करना अनुचित नहीं होगा। इस अध्याय में धर्मशास्त्रों के सम्बन्ध में दी गई अधिकांश जानकारी का आधार काणे और ऑलिवेल की पुस्तकें हैं (सन्दर्भ-सूची देखें)।

देवलस्मृति और कुछ धर्मशास्त्रीय निबन्धों तथा टीकाओं को छोड़ अन्य धर्मशास्त्रों

का आविष्कार इस्लाम और ईसाइयत से संपर्क के पहले हुआ। इसलिए अधिकांश धर्मशास्त्रों में मतान्तरण और शुद्धि के सन्दर्भ में पातक और प्रायश्चित की सुस्पष्ट चर्चा न होना स्वाभाविक है। लेकिन मतान्तरण से उद्भूत पातकों का और उनके निस्तारण हेतु करणीय प्रायश्चितों का विवेचन धर्मशास्त्रों में अवश्य है। इस्लाम से संपर्क के पहले, प्राचीन हिन्दुओं का अनार्य जातियों के साथ संपर्क हुआ तथा इन लोगों को हिन्दू समाज ने आत्मसात किया इसके कई प्रमाण हैं।

मतान्तरण से उद्भूत पातक

'पातक' की व्याख्या करना दुष्कर है। सामान्यतः इसका अर्थ है, ''**पातयति अधो गमयति दुष्क्रियाकारिणमिति पातकम्**'' अर्थात् पातक वह है जो मनुष्य का पतन करता है। पातक वह दुष्कृत्य है जो ऋत, प्रकृति अथवा ईश्वर के नैतिक नियमों के विरुद्ध हो। शास्त्रविहित कर्म न करने, निन्दित कर्म का आचरण करने तथा इन्द्रियनिग्रह न करने से मनुष्य का पतन हो जाता है। पापी व्यक्ति धार्मिक अनुष्ठान करने के अयोग्य होता है तथा पृथ्वीलोक में उसकी अधोगति होती है। वह जाति और समाज से निष्कासित हो जाता है।

पातकों की गणना और उनकी श्रेणियों एवं प्रकारों के बारे में धर्मसूत्रों में अत्यधिक मत-वैभिन्य है। स्मृतिकारों ने भी पातकों के अलग-अलग प्रकार से भेद किये हैं। मनु ने पातकों की छः श्रेणियाँ दी है - महापातक, उपपातक, जातिभ्रंश, संकरीकरण, अपात्रीकरण एवं मलिनीकरण। ब्रह्महत्या, सुरापान, ब्राह्मण के सुवर्ण की चोरी, गुर्वगमनागमन तथा इनमें से अन्यतम से संसर्ग को महापातक कहा गया है। उल्लेखनीय बात यह है कि मतान्तरण से उद्भूत पातकों को महापातकों की सूची में शामिल नहीं किया जा सकता। गोहत्या (याज्ञवल्क्य स्मृति 3/234), व्रात्यता (याज्ञवल्क्य स्मृति 3/234), वेद विस्मरण (गौतम धर्मसूत्र 3/3/11), नास्तिक होना (वसिष्ठ स्मृति 3/236), निषिद्धभक्षण जैसे मतान्तरण से उद्भूत पातक 'उपपातक' अर्थात् हल्के माने गए हैं। उपपातकों की सूची में गोवध सर्वप्रथम है। पशु-पक्षियों के काटने व स्पर्श करने पर, निषिद्ध भोजन खाने पर, पातकी के साथ एक ही पंक्ति में खाने पर, निषिद्ध प्याज, लहसुन, मांस का भक्षण करने पर मनुष्य अपवित्र हो जाता है। मनु के अनुसार भेड़, मछली, भैंसा जैसे जानवरों को मारना मनुष्य को वर्णसंकर करने वाले पाप हैं (मनुस्मृति 11/68)। मनु के अनुसार कृमि, कीट तथा पक्षियों का वध करना, मद्य के साथ लाये पदार्थ का भोजन जैसे कर्म मनुष्य को मलिन (मलिनिकरण पाप) करते हैं

(मनुस्मृति 11/69)। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में पापों के वर्गीकरण की दो श्रेणियाँ दी हैं। पतनीय (जिनसे जातिच्युतता होती है) और अशुचिकर (जिनसे जातिच्युतता नहीं होती किन्तु अशुचिता होती है)। वेदाध्ययन का त्याग (आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/21/8) और नास्तिकता (गौतम धर्मसूत्र 3/3/1) पतनीय कर्म हैं जबकि निषिद्ध मांस का भक्षण अशुचिकर है (आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/21/15)। परिणाम और प्रायश्चित विधान की निश्चिति की दृष्टि से पापों का अकामकृत (अज्ञानपूर्वक किये गये) और कामकृत (ज्ञानपूर्वक किये गये) ऐसा वर्गीकरण किया जाता है।

मतान्तरण से उद्भूत पातकों के प्रायश्चित

'प्रायश्चित' का अर्थ धर्मशास्त्र में इस प्रकार बताया गया है -

प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते।

तपोनिश्चयसंयोगात् प्रायश्चित्तमिति स्मृतम्।।

(मनुस्मृति 11/48 , उत्तरांगिरस स्मृति 4/1)

अर्थात् प्रायः को तप तथा चित्त को निश्चय कहा जाता है, तप और निश्चय का संयोग ही प्रायश्चित कहा गया है।

प्रायश्चित विवेककार शूलपाणी ने प्रायश्चित की निम्नलिखित व्याख्या की है -

निश्चयसंयुक्तं पापक्षयसाधनत्वेन निश्चितमित्यर्थः

अर्थात् जो निश्चय से युक्त तप, पापक्षय के साधन के रूप में निश्चित होता है, वही प्रायश्चित है। पाप करने के उपरान्त पश्चाताप से मन के युक्त होने पर व्यक्ति प्रायश्चित के योग्य हो जाता है।

मतान्तरण से उद्भूत लगभग सभी पातक उपपातक श्रेणी के हैं। यद्यपि सभी उपपातकों के लिए धर्मशास्त्रकारों ने भिन्न-भिन्न प्रायश्चितों की व्यवस्थाएँ दी है परन्तु सभी उपपातकों के प्रायश्चित हेतु एक सामान्य व्यवस्था देने का भी प्रयत्न किया है। याज्ञवल्क्य ने इसके बारे में नियम दिया है -

उपपातकशुद्धिः स्यादेवं चान्द्रायणेन वा।

पयसा वापि मासेन पराकेणाथ वा पुनः।।

(याज्ञवल्क्य स्मृति 3/265)

अर्थात् उपपातक से शुद्धि गोव्रत से अथवा चान्द्रायण से भी अथवा मासिक

पयोव्रत से भी अथवा पराक से भी हो सकती है। ये सभी व्रत मासिक तथा समय की दृष्टि से परिवर्तनीय है।

अकामकृत पाप की नरकोत्पादिका और व्यवहारनिरोधिका शक्तियाँ प्रायश्चित से नष्ट हो जाती हैं किन्तु कामकृत पाप की व्यवहारनिरोधिका शक्ति ही प्रायश्चित से नष्ट हो जाती है, नरकोत्पादिका नहीं। मतान्तरण प्रायः छल कपट द्वारा या बलपूर्वक किया जाता है। इसे अकामकृतपाप ही समझना चाहिए। अतः यदि मतान्तरित व्यक्ति पश्चाताप जताता है, प्रायश्चित करता है तो उसे सामाजिक व्यवहार के लिए योग्य समझना, शास्त्रसंमत है। जहाँ मतान्तरण सोच समझकर हुआ हो, वहाँ भी उचित प्रायश्चित के पश्चात परावर्तित व्यक्ति शिष्टजनों से सम्पर्क और अन्य सामाजिक व्यवहारों के योग्य तो हो ही जाता है।

व्रात्य और म्लेच्छ

प्राचीन हिन्दू समाज से परे लोगों के लिए 'व्रात्य' और 'म्लेच्छ' शब्द प्रयुक्त थे, इसलिए मतान्तरण के सन्दर्भ में इन शब्दों का अर्थ समझना आवश्यक है। 'व्रात्य' इस शब्द का उद्भव सर्वप्रथम कब और कैसे हुआ? इसका निश्चित उत्तर प्राप्त करना असम्भव सा है। 'व्रात' अर्थात् 'समूह' या 'गुट' इस शब्द से व्रात्य शब्द उत्पन्न हुआ है, ऐसी एक मान्यता है। समूह में रहने वाला या चलने वाला यह व्रात्य शब्द का वास्तविक अर्थ बताया गया है। 'व्रत' इस शब्द से 'व्रात्य' शब्द उत्पन्न हुआ, ऐसी एक और मान्यता है। प्राचीन हिन्दुओं की भाषा बोलने वाले लेकिन अनुशासनहीन और संस्कारहीन जीवन व्यतीत करने वाले समुदायों को सम्भवतया व्रात्य कहा जाता था। व्रात्य समुदाय वेदाध्ययन ही नहीं अपितु व्यापार या हल जोतने का काम भी नहीं करते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के उपनयन का अन्तिम निर्धारित समय क्रमशः सोलहवाँ, बाईसवाँ और चौबीसवाँ वर्ष बताया गया है, यदि तब तक उपनयन नहीं होता तो ये पतित हो जाते हैं तथा सावित्री के दान से च्युत (पतितसावित्रिक) हो जाते हैं, उन्हें गायत्री जप का अधिकार नहीं होता। उपनयन संस्कार से हीन होकर व्रात्यस्तोम किये बिना वे व्रात्य कहलाते हैं।

वसिष्ठ का मत है कि व्रात्य का न तो उपनयन संस्कार करना चाहिए, न ही अध्यापन करना चाहिए, न ही याजन करना चाहिए, न ही विवाह करना चाहिए –

नैतानुपनयेन्नाध्यापयेन्न याजयेन्नैभिर्विवाहयेयुः

(वसिष्ठ स्मृति 11/55)

इस प्रकार, व्रात्य समुदाय पूर्णतया धर्म बहिष्कृत, समाज बहिष्कृत थे। लेकिन क्या शास्त्रकारों और प्राचीन हिन्दू समाज ने उन्हें अपनाने के रास्ते बन्द किये थे ? उन्हें धर्म का पुन: अधिकारी होने तथा शिष्ट व्यवहार हेतु प्रथम व्रात्यस्तोम या उद्दालक व्रत करना पड़ता था और फिर उपनयन संस्कार किया जाता था। तत्पश्चात एक वर्ष तक उदकोपस्पर्शन करने के उपरान्त वे वेदाध्ययन प्रारम्भ करते थे (आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/1/1/34 से 37)। बारह पीढ़ियों के पश्चात भी इस प्रकार का शुद्धिकरण सम्भव था।[1]

धर्मशास्त्र में 'म्लेच्छ' यह शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। सदोष एवं भ्रष्ट वाणी के कारण असुरों की पराजय हुई, इसलिए ऐसी भ्रष्ट भाषा बोलकर म्लेच्छ और असुर न बनें ऐसा शतपथ ब्राह्मण (III/2/1/23-24) में कहा गया है। म्लेच्छ और आर्य इन दोनों भाषाओं को बोलने वाले पौंड्रक, औंड्र, द्रविड, कांबोज, यवन, शक, पारद, पल्हव, चीन, किरात, दरड, खश समुदायों का उल्लेख मनुस्मृति (मनुस्मृति 10/43) में है। म्लेच्छ गोभक्षक हैं यह उल्लेख पराशरस्मृति में मिलता है (पराशरस्मृति 9/36)। वेदाध्ययन और अनुष्ठान स्नान के पश्चात, म्लेच्छ, अशुचिकर और अधार्मिक लोगों से मनुष्य को बातचीत नहीं करनी चाहिए ऐसा उपदेश गौतम धर्मसूत्र (9/16) में मिलता है। आत्मा के तीन गुणों के आधार पर तीन गतियों के भेद और तदनुसार जन्मावस्थाओं के फल की चर्चा करते हुए मनु महाराज ने म्लेच्छों को "मध्यमा तामसी गति:" का बताया है (मनुस्मृति 10/43)। म्लेच्छों को उन देशों का निवासी बताया गया है जहाँ वर्णाश्रम व्यवस्था का अभाव है। सन् 1017 में आक्रमणकारी महमूद गजनवी के साथ हिन्दुस्तान में आये हुए अलबेरुनी नाम के यात्री ने चंडालों को छोड़ अन्य सभी अहिन्दुओं को म्लेच्छ तथा इस शब्द का अर्थ "अशुद्ध, मनुष्य और प्राणियों की हत्या करने वाले गोभक्षक" बताया है।[2] प्राचीन हिन्दू समाज म्लेच्छों को अत्यंत निन्दनीय, हीन और घृणास्पद समझता था यह स्पष्ट है। इस्लामी आक्रमण के बाद यह तिरस्कारयुक्त संज्ञा मुस्लिमों के लिए प्रयुक्त हुई। लेकिन क्या शास्त्रकारों और प्राचीन हिन्दू समाज ने उन्हें और उनके द्वारा मतान्तरित लोगों को अपनाने के रास्ते बन्द किये थे?

इस्लाम पूर्व विधर्मियों को आत्मसात करने की प्रक्रिया

इस्लामी आक्रमण के कई सदियों पूर्व से विधर्मियों को हिन्दू समाज में आत्मसात करने की प्रक्रिया निरंतर चल रही थी। यवन, शक, हूण, कुषाणादि अहिन्दू समुदायों को हिन्दू समाज ने अपना लिया था। इसके कई साहित्यिक और पुरातात्विक प्रमाण हैं।

सबसे प्राचीन साहित्यिक प्रमाण महाभारत के शांतिपर्व के 65 वें अध्याय में मिलता है जहाँ इंद्र देव सम्राट मांधातृ को यवनादि विदेशियों को वैदिक धर्म में सम्मिलित करने का परामर्श देते हैं।

सबसे प्राचीन पुरातात्विक प्रमाण है मध्य प्रदेश के विदिशा जिले में आधुनिक बेसनगर के पास स्थित पत्थर से निर्मित हेलिओडोरस स्तंभ। इसका निर्माण 110 ईसा पूर्व हेलिओडोरस ने कराया था जो यूनानी राजा अंतिलिकित का सुंग राजा भागभद्र के दरबार में दूत था। इस राजदूत ने वैदिक धर्म की व्यापकता से प्रभावित होकर भागवत धर्म स्वीकार कर लिया। उसी ने भक्तिभाव से एक विष्णु मंदिर का निर्माण करवाया तथा उसके सामने गरुड़ध्वज स्तंभ बनवाया। इस स्तंभ से प्राप्त पाली भाषा में ब्राह्मी लिपि में लिखा अभिलेख इस प्रकार है –

देव देवस वासुदेवस गरुड़ध्वजे अयं

कारिते इष्य हेलियो दरेण भाग

वर्तन दियस पुत्रेण नखसिला केन

योन दूतेन आगतेन महाराज स

अंतलिकितस उपता सकारु रजो

कासी पु त्र, भा, भ (भ) द्रस त्रातारस

वसेन चतु दसेन राजेन वधमानस।

(देवाधिदेव वासुदेव का यह गरुड़ध्वज [स्तंभ] तक्षशिला निवासी दिय के पुत्र भागवत हेलिओवर ने बनवाया, जो महाराज अंतिलिकित के यवन राजदूत होकर विदिशा में काशी [माता] पुत्र [प्रजा] पालक भागभद्र के समीप उनके राज्यकाल के चौदहवें वर्ष में आये थे।)

वैदिक धर्म को अपनाने वाले हेलिओडोरस जैसे कई यूनानी थे ऐसा इतिहासकार बाशम लिखते हैं। [3] अगस्त 1909 में पुणे की डेक्कन सभा को संबोधित करते हुए प्रख्यात भारत-विद सर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर ने प्राचीन काल में विदेशियों को तत्कालीन हिन्दू समाज ने किस प्रकार से आत्मसात किया, इसका विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया। [4] विस्तार-भय के कारण कुछ उदाहरणों का उल्लेख मात्र संभव है।

पतंजलि ने अपने महाभाष्य में यवन सम्राट मिनांदर (155-130 ई. पू.) का उल्लेख किया है जिसने बौद्धधर्म को अपनाया और जो 'मिलिंद' नाम से विख्यात

हुआ। कई यवन जनों ने बौद्ध धर्म को अपनाया था, यह महाराष्ट्र के जुन्नर और नासिक में मिले अभिलेखों से स्पष्ट है। मुम्बई के पास स्थित कान्हेरी तथा नासिक की गुफ़ाओं में लेख मिले हैं जिनसे ज्ञात होता है कि शकों ने हिन्दू नाम अपना लिए थे। मध्य एशिया से आये अभीरों का उल्लेख महाभारत और विष्णुपुराण में 'म्लेच्छ' ऐसा किया गया है। आज की अहीर जाति उन अभीरों की वंशज है ऐसा भंडारकर कहते हैं। दूसरी या तीसरी सदी के कुषाण सम्राट कादफीस के सिक्कों की दूसरी तरफ नंदी और त्रिशूलधारी मनुष्य है। पर्शिया से आये मग लोग राजपूताना, मारवाड़, आगरा और बंगाल में बसे। सर्पों की त्वचा से बना पवित्र धागा (अव्यंग) धारण करने की उनकी प्रथा का भविष्यपुराण में उल्लेख है। इस प्रथा को छोड़कर मग लोग यज्ञोपवीत धारण करने लगे और ब्राह्मण बने। आज के गुर्जर या गुज्जर भी मूलतः मध्य एशिया से आये थे ऐसा भंडारकर कहते हैं ।

देवलस्मृति

शुद्धि आन्दोलन का सबसे सशक्त आधार है देवलस्मृति। मूल देवलस्मृति आज उपलब्ध नहीं। उपलब्ध देवलस्मृति में नब्बे श्लोक हैं। उनमें से तिहत्तर श्लोक म्लेच्छशुद्धि से सम्बन्धित हैं। देवल ऋषि के सांख्याचार्य, योगाचार्य, ब्रह्मवादी, ज्योतिषी, वास्तुविद होने का उल्लेख भिन्न काल में आविष्कृत वेद, स्मृति, महाभारत और पुराणों में है; उदा. महाभारत के अनुशासन पर्व में उनको 'चिर स्मरणीय' कहा गया है। इसलिए 'देवल' किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं अपितु भिन्न व्यक्तियों को दिया गया नाम है ऐसी विद्वानों की मान्यता है। देवलस्मृति का लेखन चार विभिन्न कालों में हुआ; सबसे पहला भाग सम्भवतया ईसा की पहली सदी में और अंतिम भाग अधिकाधिक बारहवीं सदी में तथा म्लेच्छशुद्धि से सम्बन्धित भाग आठवीं सदी में लिखा गया, ऐसी मान्यता है। [5] मंदिर-विध्वंस, मूर्तिभंजन, स्त्रियों का बलात्कार, लूटपाट, निरपराध लोगों की सामूहिक हत्या और बलपूर्वक मतान्तरण यह इस्लामी आक्रमण की विशेषताएँ तत्कालीन हिन्दुओं को पूर्णतया अपरिचित थीं। इनसे व्यथित होकर मुनिवर सिन्धु नदी के किनारे बैठे देवलमुनि के पास जाकर म्लेच्छों द्वारा मतान्तरित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को किस प्रकार से शुद्ध किया जाय यह प्रश्न पूछते हैं -

सिन्धुतीरे सुखासीनं देवलं मुनिसत्तमम्

समेत्य मुनयः सर्वे इदं वचनमब्रुवन् (1)

भगवन्म्लेच्छनीता हि कथं शुद्धिमवाप्नुयुः

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैवानुपूर्वशः (2)

कथं स्नानं कथं शौचं प्रायाश्चित्तं कथं भवेत्

किमाचारा भवेयुस्ते तदाचक्ष्व सविस्तरम् (3)

उसके उत्तर में सहवास, अभक्ष्यभक्षण, अगम्यागमन, अपहरण, बलात्कारादि भिन्न परिस्थितियों में, भिन्न काल के लिए मतान्तरित हुए चारों वर्णों के पुरुष-महिला-बालकों की शुद्धि किस प्रकार से की जानी चाहिए यह देवलमुनि ने विस्तार से बताया। इस्लामी आक्रमण के उस प्रारम्भिक काल में बीस वर्षों तक मतान्तरित लोगों की शुद्धि के बारे में देवलमुनि ने दिशादर्शन किया है। देवलमुनि के उपदेश का तत्कालीन हिन्दुओं ने अनुसरण किया इसका इतिहास साक्षी है। इस्लामी शासन-काल के प्रारम्भ से ही शुद्धि का व्यापक एवं सफल प्रयास हुआ। प्राचीन काल से जो शुद्धि संस्कार शास्त्रसम्मत था, उसे इस्लामी आक्रमण से संत्रस्त हिन्दुओं ने प्रत्यक्ष क्रियान्वित किया।

सन्दर्भ

1) काणे, पृ. 385-387

2) सचौस, पृ. 137

3) बाशम, पृ. 431

4) उत्गीकर, पृ. 624-638

5) वाडेकर, पृ. 5-7

इस्लामी शासन-काल में शुद्धि

भारत पर प्रथम इस्लामी आक्रमण खलीफा उमर के कार्यकाल में सन् 636 में हुआ। यह आक्रमण थाने (मुंबई) पर हुआ और इसमें इस्लामी सेना परास्त हुई। दूसरा आक्रमण सन् 643 में लाहौर पर हुआ। उमय्या खलीफा मुआविया के कार्यकाल में सन् 680 में मकरान, बलूचिस्तान पर इस्लामी सेना ने विजय प्राप्त की। सिंध पर दो असफल आक्रमण होने के बाद पर्शिया के राज्यपाल हज्जाज़ बिन यूसुफ़ ने अपने रिश्तेदार मुहम्मद बिन कासिम को सिंध पर विजय पाने का दायित्व सौंपा। यह आक्रमण 712-713 में हुआ। सिंध और मुल्तान पर इस्लामी सेना ने विजय प्राप्त की। लेकिन सन् 716 में वहाँ पुनः हिन्दू सत्ता स्थापित हुई। सैकड़ों वर्षों तक चलने वाला इस्लामी शासन इस प्रकार से शुरू हुआ।

सन् 722-744 में खलीफा हिशाम के शासनकाल में टमीम नामक सिंध का राज्यपाल था। उसके कार्यकाल में सिंध में बड़ी संख्या में मतान्तरितों की शुद्धि हुई। उसके पश्चात् राज्यपाल बने हकीमस टस्स के काल में केवल सिंध में ही नहीं अपितु पूरे हिन्दुस्तान में बहुसंख्यक लोग पुनः मूर्तिपूजक बने ऐसा खेदपूर्ण उल्लेख अरब यात्री अल-बिलादुरी ने किया है।[1]

केवल मतान्तरित हिन्दुओं को पुनः आत्मसात कर तत्कालीन हिन्दू समाज रुका नहीं। मुहम्मद बिन कासिम के अरबिस्तान लौटने के बाद भी उसके साथ आए इस्लामी आक्रामक सिंधु नदी के पश्चिमी तट पर अत्यल्प संख्या में बसे। सिंध की राजधानी मन्सूरा में इन विदेशी आक्रमणकारियों ने हिन्दू धर्म को स्वीकार किया ऐसा इतिहासकार सर डेनिसन रॉस लिखते हैं।[2] मुस्लिम देशों से पलायन कर पुनः हिन्दुस्तान में लौटे गुलामों की शुद्धिकरण विधि का वर्णन विख्यात पर्शियन इतिहासकार अलबरूनी अथवा अल-बेरूनी (973-1048) ने किया है।[3]

बापा रावल का अग्रणी कार्य

अरब मुस्लिमों के आक्रमण को पूर्व की ओर बढ़ने से रोकने वाले वीर पुरुष का नाम है बापा रावल (संस्कृत 'वाप' -बीज बोने वाला, पिता; बापा रावल के सोने के

सिक्के पर उनका नाम भिन्न-भिन्न रूपों में मिलता है जैसे वप्प, वाप्प, वप्पक, बप्प, बप्पक, बप्पाक, बाप्प, बाष्प, बापा)। 'हिन्दुआ सूरज', 'राजगुरु', 'चक्रवर्ती' जैसी उपाधियों को सार्थक करने वाले बापा रावल (मूल नाम - कालभोज, 713-810, पाकिस्तान के रावलपिंडी शहर का नाम इसी शिवभक्त वीर से आता है) ने अरब मुस्लिमों को रोका ही नहीं अपितु उनका पीछा करते हुए उन्हें खदेड़ दिया और अपने साम्राज्य का पश्चिमी विस्तार किया। सन् 735 में हज्जाज ने राजपूताने पर अपनी सेना भेजी। बापा रावल ने हज्जाज की सेना को हज्जाज के मुल्क तक खदेड़ दिया। इससे संतुष्ट न होकर बापा रावल गजनी (संस्थापक राजा गज) तक गए। वहाँ के मुस्लिम शासक सलीम को पराजित कर बापा रावल ने चौरा वंशज को राज्य की बागड़ोर सौंप दी। बापा रावल ने सलीम की बेटी से विवाह किया। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में बापा रावल खुरासान गए। इस्पाहन (वर्तमान ईरान का प्रांत), कश्मीर, ईराक, ईरान, तुरान (मध्य एशिया का भाग), काफ़िरिस्तान (वर्तमान अफ़गानिस्तान का नूरिस्तान प्रांत) के म्लेच्छ शासकों को परास्त कर उन सभी की कन्याओं से बापा रावल ने विवाह किया।[4] मुस्लिम कन्याओं से विवाह करने की प्रथा उत्तरवर्ती राजपूतों ने करने के और उदाहरण मिलते हैं, जिनका उल्लेख आगे किया है।

ग़जनवी शासन-काल में शुद्धि

ग़जनवी घराने के संस्थापक अबू मन्सूर सुबुक्तगीन (942 -997) ने पंजाब के निकट हिन्दुशाही वंश राज्य के शासक परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री जयपालदेव को सन् 987 में परास्त किया। अप्रैल 995 में ज़बुल (वर्तमान अफ़गानिस्तान का प्रांत) के शासक के बेटे अबुल अली ने सुबुक्तगीन के बेटे महमूद (971-1030) को निशापुर (वर्तमान ईरान के खुरासान प्रांत में) से निष्कासित किया। अबुल अली ने जयपालदेव के पोते सुखपाल को मतान्तरित कर उसे नवासा शाह नाम दिया। सन् 996 में अबुल अली को बंदी बनाया गया और उसके एक वर्ष बाद उसकी मृत्यु हुई। सन् 1006 में महमूद ने मुल्तान के राज्यपाल दाउद के विरुद्ध अभियान किया। इस अभियान में नवासा शाह (मतान्तरित सुखपाल) ने महमूद का साथ दिया। दाउद के पलायन के पश्चात् महमूद ने नवासा शाह को मुल्तान का राज्यपाल नियुक्त किया। सन् 1007 में सुखपाल इस्लाम को त्याग कर पुनः हिन्दू बना। इस बारे में उसने धार्मिक नेताओं से भी चर्चा की थी। उस समय महमूद खुरासान में था। सुखपाल की शुद्धि का समाचार सुनते ही वह तुरंत सुखपाल को सबक सिखाने लौट आया।

उनके बीच हुई लड़ाई में सुखपाल पराजित हुआ। उसे बंदी बनाया गया लेकिन उसने हिन्दू धर्म का त्याग नहीं किया।[5]

सन् 1021 में महमूद ग़ज़नवी ने सोमनाथ के मंदिर का विध्वंस किया। इससे क्रुद्ध होकर महाराजा मंडलिक ने गुजरात के राजा भीम देव के साथ उसका पीछा किया। हिन्दू तलवार के आगे इस्लामी सैनिक झुक गए। स्वयं महमूद दुम दबाकर भाग गया लेकिन उसके स्त्री-पुरुष अनुयायी बंदी बनाये गए। तुर्क, अफ़ग़ान और मुगल वंश की कुमारिकाओं को पत्नियों के रूप में सरलतापूर्वक स्वीकार किया गया। अन्यों की अंतड़ियाँ वमनकारी एवं रेचक पदार्थों से साफ करने के पश्चात् उनका आदेशानुसार निपटारा किया गया। प्रतिष्ठित पुरुषों को दाढ़ियाँ बनाने को बाध्य किया गया और उन्हें राजपूतों के शेखावत और वाघेल वंशों में शामिल किया गया। निम्न स्तर के लोगों को कोली, खांट, बाबरिया, मेर जातियों में शामिल किया गया। सभी को उनकी प्रचलित विवाह और अंत्येष्टि विधियों को जारी रखने की स्वतंत्रता दी गई।[6]

सन् 1019 में महमूद ग़जनवी ने बरन (बुलंदशहर) के किले पर आक्रमण किया। विशाल इस्लामी सेना से अपने प्राण बचाने के लिए वहाँ के राय हरदत्त ने अपने 10000 लोगों के साथ इस्लाम को स्वीकार किया। लेकिन जब सन् 1193 में कुतबुद्दीन ऐबक ने बरन पर आक्रमण किया तो वहाँ राय हरदत्त के वंशज राय चन्द्रसेन ने उसका डंटकर प्रतिकार किया। राय चन्द्रसेन के राज्य में कोई मुस्लिम नहीं था।[7] स्पष्ट है कि बीच के 175 वर्षों में राय हरदत्त के वंशज एवं प्रजा पुनः हिन्दू बने।

मतान्तरित नासिरूद्दीन खुश्रुशाह द्वारा स्थापित हिन्दू राज्य

अलाउद्दीन खिलजी (1250-1316, राज्यकाल 1296-1316) ने अपने चाचा जलालुद्दीन की धोखे से हत्या कर 22 अक्टूबर 1296 को स्वयं को सुल्तान घोषित किया। सन् 1298 में अलाउद्दीन ने उलूग ख़ाँ एवं नुसरत ख़ाँ को गुजरात विजय के लिए भेजा। कर्णावती (अहमदाबाद) के निकट राजा कर्णदेव वाघेला और अलाउद्दीन की सेना में संघर्ष हुआ। राजा कर्ण को पराजित कर अलाउद्दीन खिलजी उसकी सम्पत्ति एवं उसकी पत्नी कमला देवी तथा बेटी देवल देवी को साथ लेकर वापस दिल्ली आ गया। कमलादेवी को अलाउद्दीन तथा देवलदेवी को उसके बेटे के जनानखाने में भर्ती किया गया। इस अभियान में गुजरात की भरवाड़ (ऐतिहासिक अभिलेखों में इसे परवारी जाति भी बताया गया है) नामक लड़ाकू जाति के दो तेजस्वी भाइयों को बंदी बनाकर अलाउद्दीन ले गया। उन्हें मतान्तरित कर उनके 'हसन' तथा 'हिसामुद्दीन' नाम

रखे गए। अलाउद्दीन के दरबारियों द्वारा उनका यौन शोषण भी किया गया। इस अपमान से भड़की प्रतिशोध की भावना दोनों भाइयों ने दबाकर रखी थी। हसन के पराक्रम से अलाउद्दीन के छोटे बेटे मुबारक का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। सन् 1317 में मुबारक 'कुतबुद्दीन' नाम धारण कर सुल्तान बना।[8] हसन के प्रति सुल्तान कुतबुद्दीन की आसक्ति इस सीमा तक पहुँची कि सन् 1318 में देवगिरी के राजा हरपाल देव की हत्या के बाद सुल्तान ने उसे सेनापति नियुक्त किया एवं दक्षिण के अभियान का प्रमुख बनाया। उसे 'खुश्रुखान' की उपाधि दी गई।[9] देवगिरी से मलबार के प्रवास में खुश्रुखान रात्रि को हिन्दुओं से गुप्तवार्ता करता। सुल्तान कुतबुद्दीन से व्यापक विद्रोह की योजना बनाकर वह मलबार पहुँचा। इस विद्रोह की भनक सुल्तान कुतबुद्दीन के सरदारों को लगी थी। उन्होंने सुल्तान को सचेत करने की चेष्टा की लेकिन खुश्रुखान के प्रति आसक्ति ने उसे अंधा बनाया था।

एक दिन, खुश्रुखान ने सुल्तान को बताया कि कई हिन्दू मुस्लिम बनना चाहते हैं लेकिन रिश्तेदारों से संबंधों के कारण सुल्तान के सामने दिन में आने से कतरा रहे हैं, अतः रात को मिलना चाहते हैं। सुल्तान ने इन हिन्दुओं को रात को बुलाया। उस रात, खुश्रुखान के मामा रणधोल और कई सशस्त्र परवारी सुल्तान के महल पहुँचे और उन्होंने सुल्तान, काज़ी और कई सरदारों की हत्या की। फिर वे जनानखाने पहुँचे जहाँ उन्होंने अलाउद्दीन की विधवा की हत्या की। यह हत्याकांड पूरा हुआ तब मध्यरात्रि थी, फिर भी वहाँ खुश्रुखान का दरबार लगा। इस प्रकार एक मतान्तरित मुस्लिम ने अपने हिन्दू भाइयों के सहयोग से ख़िलजी घराने का अंत कर दिया ।

खुश्रुखान ने 'नासिरुद्दीन खुश्रुशाह' यह नाम धारण कर स्वयं को राजा घोषित किया। उसने पूर्व सुल्तान कुतबुद्दीन की विधवा देवल देवी से विवाह किया। अगले चार-पांच दिनों के अंदर राजमहल में मूर्तिपूजा शुरू कर दी गई। 'हिन्दुओं ने कुरआन का कुर्सी के स्थान पर प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। मस्जिद के ताकी में मूर्तियाँ रख दी गईं और वहाँ मूर्तिपूजा होने लगी। उसके राज्याभिषेक होने से हिन्दुओं के अधिकार संपन्न होने से काफ़िरी नियमों को उन्नति प्राप्त होने लगी' ऐसा मुस्लिम लेखक ज़ियाउद्दीन बरनी (1285-1357) ने लिखा है। नासिरुद्दीन खुश्रुशाह ने गोहत्या पर रोक लगा दी एवं अपने सिक्के ढाल दिए। उसने अपने हिन्दू रिश्तेदारों का विवाह मुस्लिम महिलाओं से करवाया।[10] मतान्तरित नासिरुद्दीन खुश्रुशाह द्वारा स्थापित हिन्दू राज्य 20 अप्रैल 1320 से 6 दिसंबर 1320 तक चला। 'भारतीय इतिहास के छह स्वर्णिम पृष्ठ'

इस विख्यात पुस्तक में स्वातंत्र्यवीर सावरकर ने यह इतिहास विस्तार से दिया है और नासिरुद्दीन को 'हिन्दूसम्राट धर्मरक्षक' कहा है।

दक्षिण भारत में प्रारम्भिक शुद्धि का प्रमाण

अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफूर ने दक्षिण के मलबार पर सन् 1311 में आक्रमण किया। मलिक काफूर स्वयं एक मतान्तरित हिन्दू था। लेकिन मतान्तरण के बाद वह अत्याचारी बना था। मलबार के राजा राय बीर का पीछा करते-करते मलिक काफूर कण्डूर (? कण्णूर) पहुँचा। वहाँ उसे कुछ मुस्लिमों का साथ मिला। ये मुस्लिम अध्वरिया हिन्दू थे, इस्लामी रिवाजों का पूरा पालन भी नहीं करते थे। लेकिन चूंकि वे कलमा पढ़ सकते थे, मलिक काफूर ने उन्हें जीवनदान दिया।[11] इस्लाम में मतान्तरण होने के बाद भी हिन्दू अपने पुराने रीति रिवाजों का पालन करते थे तथा उन्हें हिन्दू माना जाता था यह इस बात से स्पष्ट है।

श्री स्वामी विद्यारण्य (1296-1391) के जीवन की कुछ घटनाओं को लेकर मतभिन्नता है। हरिहर और बुक्का इन दो मतान्तरित भाइयों को पुनः हिन्दू बनाकर उन्हें सन् 1346 में विजयशालिनी विजयनगर साम्राज्य की स्थापना करने की प्रेरणा श्री स्वामी विद्यारण्य ने दी ऐसी परंपरा है। देवगिरी के राजा संगम के हरिहर और बुक्का पुत्र थे। वे पहले राजा प्रतापरुद्र द्वितीय की सेवा में थे, लेकिन इस साम्राज्य का इस्लामी सेना से पराजय होने के बाद वे कम्पिली (वर्तमान बल्लरी, रायचूर और धारवाड़ जिले, काम्पिली दुर्ग, कोप्पल दुर्ग, होसदुर्ग-अनेगुंडी) गए। कम्पिली के पराजय के बाद दोनों बंदी बनाकर दिल्ली लाये गए जहाँ मुहम्मद तुगलक का राज था। मुस्लिम बन जाने के कारण उन्हें जीवनदान मिला। सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने उन्हें कम्पिली के प्रशासन को सँभालने एवं वहाँ के हिन्दुओं के विद्रोह को कुचलने के लिए भेज दिया। लेकिन वहाँ जाने के बाद दोनों भाई पुनः हिन्दू बने। उन्होंने सार्वभौम हिन्दू राज्य की नींव रखी जो बाद में विजयनगर साम्राज्य के रूप में विस्तारित हुआ।[12]

सन् 1398-1399 में विजयनगर के राजा हरिहर द्वितीय (बुक्का का पुत्र) ने बहामनी राजा पर असफल आक्रमण किया। उस समय बहामनी सुल्तान फिरोज शाह बहामनी ने 2000 ब्राह्मण कन्याओं को बंदी बनाया। उसके बाद में आए सम्राट देवराया ने बहामनी सुल्तान से समझौता किया। इसके अनुसार दस लाख होन दण्ड देकर ब्राह्मण कन्याओं की मुक्तता की गई। इन सब का स्वधर्म और स्वजाति में स्वागत किया गया।[13]

शुद्धि के लिए प्रथम बलिदान

फिरोज शाह तुगलक (1309–1388) के शासनकाल (1351–1388) का वर्णन जियाउद्दीन बरनी ने 'तारीख-ए-फिरोजशाही' में किया है। इसमें निम्न घटना का वर्णन है, जो सम्भवतया 1375 के आसपास घटी– 'दिल्ली का एक वृद्ध ब्राह्मण (जुनारदार, जनेऊधारी) अपने घर में सार्वजनिक मूर्तिपूजा करने का आग्रह करता है तथा शहर के हिन्दू और मुस्लिम दोनों लोग मूर्तिपूजा करने उसके घर जाते हैं ऐसा प्रतिवेदन सुल्तान को दिया गया। इस ब्राह्मण ने लकड़ी की पट्टी बनवाई थी जिसके भीतर और बाहर दानवों की प्रतिमाएँ थीं। विशिष्ट दिनों पर श्रद्धाहीन लोग उसके घर जाकर, शासकीय अधिकारियों के अपरोक्ष मूर्तिपूजा करते थे। इस ब्राह्मण ने मुस्लिम महिलाओं को भ्रष्ट कर उन्हें श्रद्धाहीन बनाया था यह भी सुल्तान को बताया गया। ब्राह्मण और उसकी पट्टी को सुल्तान के सामने फिरोजाबाद में पेश किया जाय ऐसा आदेश निकाला गया। न्यायाधीशों, वैद्यकीय विशेषज्ञों, वरिष्ठों एवं वकीलों के विचाराधीन उसका विषय रखा गया। विधि के प्रावधान स्पष्ट हैं ऐसा उनका मत था– या तो ब्राह्मण ने मुस्लिम बनना चाहिए अथवा उसे जलाया जाना चाहिए। ब्राह्मण को दीन और सही तरीका बताया गया लेकिन उसको स्वीकार करने से उसने इंकार किया। दरबार के द्वार के बाहर लकड़ियों की चिता बनाने का आदेश दिया गया। हाथ-पाँव बाँधकर ब्राह्मण को उस चिता में फेंक दिया गया। लकड़ी की पट्टी को भी उसके ऊपर फेंक कर चिता को जलाया गया। इस पुस्तक का लेखक (बरनी) दरबार में उपस्थित था तथा उसने इस मृत्युदण्ड को स्वयं देखा है। ब्राह्मण के सिर और पैरों की दिशाओं में लकड़ी की पट्टी को आग लगाई गई। लकड़ी सूखी थी, आग पहले उसके पाँव तक पहुँची और उसके मुँह से पुकार आई। ज्वालाओं ने उसके सिर को शीघ्र ही वेष्टित कर उसे निगल लिया'।[14] इस्लामी शासन-काल में शुद्धि करने के 'अपराध' के लिए हुआ यह प्रथम बलिदान है।

रावल जगमाल का पराक्रम

सिद्धपुरुष रावल मल्लिनाथ मालावत (जिनके नाम से जोधपुर के पश्चिम के भाग का नाम मालानी-वर्तमान बाड़मेर पड़ा) के देवलोकगमन के बाद सन् 1399 में उनके पुत्र जगमाल ने महेवा पर अधिकार किया। इनके वंशज महेचा राठौड़ कहलाते हैं। एक बार गुजरात के मुस्लिम-शासक का पुत्र, सावन में झूला झूलने को नगर से बाहर इकठ्ठा हुईं महेवे की कुछ लड़कियों को ले भागा था। इसका प्रतिशोध लेने के लिए ही

रावल जगमाल व्यापारी का वेश बना कर उसके राज्य में पहुँचे और ईद के दिन मौका पाकर मुस्लिम शासक की लड़की गींदोली को ले आए। इसी से मुस्लिम शासक ने महेवे पर चढ़ाई की। परंतु युद्ध में रावल जगमाल की मार से घबरा कर उसे अपने शिविर में घुस जाना पड़ा। उस समय का यह दोहा मारवाड़ में अब तक प्रसिद्ध है – **पग पग नेजा पाड़िया, पग पग पाड़ी ढाल। बीबी पूछे खान ने, जग के केता जगमाल।।** (अर्थ – जगमाल के कदम–कदम पर शत्रुओं के नेजे तोड़कर गिराने और कदम–कदम पर उनकी ढालें गिराने का हाल सुन कर बीबी खान से पूछती है कि यह तो बताओ, आखिर, दुनिया में कितने जगमाल है)। [15] आज भी जगमाल–गींदोली की प्रेमकथा और रावल जगमाल का पराक्रम 'घूमर' नृत्य का विषय है। [16]

खान–जहाँ नासिर खान का इस्लाम–त्याग

कालपी मसनद (वर्तमान जिला जालौन, उत्तर प्रदेश की तहसील) के खान–जहाँ नासिर खान की कहानी शुद्धि के संदर्भ में रोचक है। सन् 1442–1443 के आसपास उसने कालपी का पदभार संभाला। नासिर खान के प्रतिद्वंदियों ने उसके बारे में मालवा के सुल्तान महमूद खलजी प्रथम से यूं शिकायत की – वह शरीयत से मार्गभ्रष्ट हुआ है, इस्लाम के सिद्धांतों को उसने भंग किया है, उसने मुस्लिमों का खून बहाया है, मस्जिदों का विध्वंस किया है, उसने उलेमाओं एवं मशैखों के स्थानों को नष्ट किया है, उसने मदरसों एवं मस्जिदों को सूअरों और कुत्तों का निवास स्थान बनाया है, उसने मुस्लिमों की बेटियों को बाना कमल नामक मुकादम को दिया है जिसने उन्हें नाच–गाने में उलझाया था, कालपी से समृद्ध शाहुपुर कस्बे का विध्वंस किया, वहाँ के मुस्लिमों को बंदी बनाकर उन्हें उत्पीड़ित किया, उनकी पत्नियों को अजनबियों को दे दिया, यात्रियों के मार्ग बंद कर उनके मस्जिदों में प्रवेश को नकारा और उसने रोज़ा तथा नमाज़ को पूरी तरह से त्याग दिया था। इस्लाम–द्रोही नासिर खान को दण्डित करने की अनुमति देने का निवेदन जौनपुर के नवाब ने किया। इसके अनुसार जौनपुर की सेना ने नासिर पर चढाई की। [17]

नासिर खान ने चंदेरी को पलायन किया जहाँ से उसने सुल्तान महमूद खलजी प्रथम को अपना प्रदेश लौटाने की विनती की। तब तक नासिर खान फिर से 'इस्लाम की सही राह' पर आया था, इसलिए सुल्तान महमूद खलजी प्रथम ने उसे उसका प्रदेश लौटाया। [18] अपने प्रदेश पर अधिकार बनाये रखने के लिए मुस्लिम होने का दावा इसके पहले भी नासिर खान कर चुका था। इसलिए सुल्तान महमूद खलजी प्रथम ने

निर्णय दिया कि इस बार नासिर खान को अपने इस्लाम कुबूल होने का दावा सच है यह साबित करने के लिए चार महीने का समय दिया जायेगा।[19]

रावल चाचकदेव

अपने पिता भट्टी वंशज रावल केलन की मृत्यु के बाद चाचकदेव सन् 1448 में जैसलमेर के 'रावल' बने। मुल्तान से आने वाले आक्रमणों का प्रतिकार करने उन्होंने मारोट को अपना केंद्र बनाया। स्वात के सेता टोली के प्रमुख शुमार खान से उन्होंने संधि की। उन्होंने शुमार खान की पोती सोनल देवी से विवाह किया। उस समय कन्या के पिता हैबत खान ने उन्हें दहेज में दी हुई संपत्ति लेकर रावल चाचकदेव मारोट लौटे। 'खान' यह नाम नहीं, पदवी है तथा सोनल देवी मूलतः हिन्दू थी ऐसा अनुमान टॉड करते हैं।[20] लेकिन जैसलमेर के स्थानीय इतिहासकार उसे मूलतः मुस्लिम बताते हैं।

संत कबीर

मुस्लिम परिवार में पले किसी व्यक्ति ने 'राम नाम' का सहारा लेते ही हिन्दू समाज द्वारा उसका हार्दिक स्वीकार ही नहीं अपितु उसे संत पद देने का अनूठा उदाहरण है संत कबीर (जीवनकाल सम्भवतया 1398-1448) का। कबीर के जन्म के सम्बन्ध में एक किंवदंती यह प्रचलित है कि वे स्वामी रामानंद के आशीर्वाद से एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से पैदा हुए थे। लोक-निंदा के भय से ब्राह्मणी नवजात शिशु को लहरतारा के तालाब के पानी में फेंक आई। नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पति को यह बच्चा पड़ा हुआ मिला और उन्हीं दोनों ने इनका पालन-पोषण किया। इस किंवदंती का कोई प्रमाण नहीं मिलता। एक और मतानुसार जिस परिवार में कबीर का जन्म हुआ था वह कुछ पीढ़ियों पूर्व ही इस्लाम में दीक्षित हुआ था और वह परिवार नाथों और योगियों से प्रभावित भी था। कहते हैं कि कबीर को पत्नी और 'कमाल' नाम का बेटा भी था। कबीर का जन्म चाहे जिस परिवार में हुआ हो, वे मुस्लिम परिवार में बड़े हुए थे यह निर्विवाद है।[21] तत्कालीन समाज की दृष्टि से वे मुस्लिम कुलोत्पन्न ही थे। कुछ लोग उन्हें शेख तकी का शिष्य मानकर उन्हें संस्कारों से मुस्लिम या इस्लाम से प्रभावित बताते हैं। लेकिन यह बात ठीक नहीं मालूम होती। यदि वे शेख तकी के शिष्य होते तो यह नहीं कहते - **घट-घट है अविनासी सुनहु तकी तुम शेख।**

कबीर ने संत स्वामी रामानंद से राम-नाम को दीक्षा-मन्त्र के रूप में ग्रहण किया और स्वामीजी के वे शिष्य बने। म्लेच्छ समझे जाने वाले कबीर किस प्रकार से स्वामी रामानंद के शिष्य बने, उसका उनकी माँ पर क्या असर हुआ उसका वर्णन यूं किया गया

है – विरक्त जीवन बिताने वाले कबीर गुरु की खोज में थे। तब आकाशवाणी हुई कि अपने शरीर में रामानंदी तिलक लगाओ, गले में माला धारण करो और रामानंद से गुरु-दीक्षा लो। इस पर कबीर बोले, 'स्वामी रामानंदजी तो मुझे म्लेच्छ समझकर मेरा मुँह भी नहीं देखना चाहेंगे। ऐसे में मैं क्या करूँ?' उत्तर मिला, 'रामानंदजी प्रात:काल गंगा-स्नान करने जाते हैं, सो तुम रास्ते में पड़े रहना।' आगामी दिवस प्रात: काल अपने तन-बदन की सुध खो गंगा-स्नान से लौट रहे रामानंद का पैर वहाँ पड़े कबीर पर पड़ा तो उनके मुँह से सहसा शब्द निकले, 'राम, राम! कहो बेटा!' [22]

इसी को गुरु-मन्त्र समझकर कबीर ने तिलक लगाया और कंठी धारण कर ली। अपने पुत्र का यह विचित्र वेश देख और दिन-रात राम-नाम रटते देख कबीर की माता ने बड़ा हो-हल्ला किया और इस बात को लेकर ऊधम खड़ा कर दिया। धीरे-धीरे यह बात रामानंदजी के कानों तक पहुँची कि कबीर उन्हें अपना गुरु बतलाता है। उनकी आज्ञानुसार कबीर को पकड़कर उनके सामने लाया गया। म्लेच्छ कबीर का मुँह न दिखाई दे इसलिए स्वामीजी ने एक परदे के पीछे बैठकर उससे पूछा कि उन्होंने कब इसे शिष्य बनाया। कबीर ने गंगा-किनारे की सब घटना ज्यों की त्यों सुना दी और बोले, 'सब शास्त्रों में राम-नाम को ही महामन्त्र करके लिखा है।' इस उत्तर से प्रसन्न होकर स्वामीजी पर्दा हटाकर बाहर निकल आये और कबीर को गले लगाते हुए कहा, 'पुत्र, तेरा मत पक्का है। इसी नाम को तुम अपने हृदय में स्थान दो।'

कबीर के ईश्वर का रूप पैगम्बरी खुदावाद से भिन्न था। जीव को परमात्मा से पृथक् न मानना, नामस्मरण का माहात्म्य आदि कबीर के सिद्धांत इस्लाम से विसंगत हैं। स्पष्ट है कि मुस्लिम परिवार में पले कबीर मुस्लिम नहीं रहे। कबीर स्वयं को 'भगत' या 'जुलाहा' कहते हैं, लेकिन कहीं भी स्वयं को 'मुस्लिम', 'मोमिन' या 'तुरक' नहीं कहते। हिन्दू समाज ने उन्हें अपना माना इसलिए तो उनकी मृत्यु के बाद हिन्दू उनका दाहसंस्कार करना चाहते थे। वे मुस्लिम परिवार में पैदा हुए थे इसलिए मुस्लिम उनका दफ़न करना चाहते थे इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

कश्मीर में शुद्धिकरण

भारत के मुस्लिम शासकों में कश्मीर का सुल्तान ग़ियास- उद्-दीन जैन-उल-अबिदीन (राज्यकाल 1420-1470) अपनी सहिष्णुता के लिए सराहा गया है। उसने योगवासिष्ठ और गीत-गोविन्द का अध्ययन किया था। [23] वह हिन्दू तीर्थस्थलों को जाता और हिन्दू उत्सव मनाता था। अपने अंतिम दिनों में उसने 'मोक्षोपाय' का श्रवण

किया था। अपने पूर्व दो सुल्तानों के राज्यकाल में बलपूर्वक बनाए गए नव-मुस्लिमों को पुनः हिन्दू बनने को उसने व्यक्तिगत एवं आधिकारिक तौर पर प्रोत्साहित किया।[24] सुल्तान ग़ियास-उद्-दीन जैन-उल-अबिदीन के राज्य में लोग अपनी इच्छानुसार किसी भी उपासना-मत का पालन करते थे; सुल्तान सिकंदर के राज्यकाल में मुस्लिम बने अधिकतर ब्राह्मणों ने इस्लाम का त्याग किया और मुस्लिम विद्वानों (उलेमाओं) का उन पर ना कोई सत्ता या नियंत्रण था ऐसा 'तबकात-ए-अकबरी' का लेखक ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद (मृत्यु अक्टूबर 1594) लिखता है।[25]

कश्मीर के इस्लामीकरण में सूफियों का बड़ा योगदान रहा है। सूफियों के विभिन्न तरीकों या घरानों में से नूरबख्शिया विचार का प्रसार करने मीर शम्सुद्दीन इराकी नामक सूफी सन् 1484 में खुरासान के राज्यपाल हुसैन मिर्जा का दूत बनकर कश्मीर में आया। नूरबख्शी तरीके के प्रवर्तक सैय्यद मुहम्मद नूरबख्श के बेटे सैय्यद शाह कासिम अनवर का यह शिष्य था।[26] कुछ समय कश्मीर रहने के बाद वह अपने देश लौटा लेकिन सुल्तान फतहशाह के राज्यकाल (1505-1516) में दोबारा कश्मीर आया। मूसा रैना, जो उस समय प्रधानमंत्री था, मीर शम्सुद्दीन इराकी का साथी था। दोनों ने मिलकर कश्मीर के हिन्दुओं के विरुद्ध जिहाद पुकारा। उनके मंदिरों को ध्वस्त कर वहाँ मस्जिदें बनाई गई। एक साथ 24000 हिन्दू परिवारों को मुस्लिम बनाया गया। मंदिरों के पुजारियों को बंदी बनाया गया तथा ब्राह्मणों की भूमि को राज्यसात किया गया। मूसा रैना के बाद आए इब्राहिम मगरे, जहांगीर पदरू, उस्मान दर तथा काची चक यह मुस्लिम नेता उससे भी दुष्टतर थे। लेकिन नेतृत्व के लिए उनमें दो वर्षों तक आपसी संघर्ष हुआ। इस स्थिति में निर्मल कंठ अथवा पंडित कंठ भट्ट ने शुद्धि का कार्य किया। मीर शम्सुद्दीन इराकी के कारण 1506-1514 में मुस्लिम बने अधिकतर हिन्दुओं को पंडित कंठ भट्ट ने फिर से हिन्दू बनाया। कंठ भट्ट और अन्य हिन्दू नेताओं ने इस शुद्धिकरण के पहले परिषद् आयोजित की थी ऐसा उल्लेख मिलता है।[27] दिल्ली के सुल्तान सिकंदर लोधी के सहयोग से सन् 1516 में मुहम्मद शाह कश्मीर का सुल्तान बना। उसने काची चक को प्रधान मंत्री घोषित किया। नए सुल्तान ने काची चक को हिन्दू धर्म नष्ट करने का आदेश दिया। काची चक के प्रधान मंत्री बनने पर मीर शम्सुद्दीन इराकी का प्रभाव फिर से बढ़ा। लगभग 800 हिन्दू नेताओं की 1518 में सामूहिक हत्या की गई।[28]

कश्मीर में शुद्धि का अगला ज्ञात प्रयास उसके लगभग 350 वर्षों बाद हुआ।

कश्मीर नरेश श्रीमान् राजराजेश्वर महाराजाधिराज श्री सर रणबीर सिंह जी (1830-1885) ने भारत के बड़े-बड़े पंडितों से 'श्रीरणवीर कारित प्रायश्चित भाग' ग्रन्थ का निर्माण करवाया था। इस ग्रंथ में महामहोपाध्याय शिवदत्त शास्त्री रचित 'म्लेच्छी भूतानां शुद्धि व्यवस्था' यह अध्याय है।

राव सूरजमल का बलात्कारित कुमारिकाओं के लिए बलिदान

अपने पिता जोधपुर-संस्थापक राव जोधा के बाद सूरजमल सन् 1491 में जोधपुर के राजसिंहासन पर विराजित हुए। सन् 1516 में तीज के पर्व पर कुछ पठानों ने पीपाड़ पर चढ़ाई की। वहाँ की 140 कुमारिकाओं को पठानों ने अपहृत किया एवं उनसे बलात्कार किया। यह समाचार सुनते ही राव सूरजमल ने अपने जागीरदारों के साथ उन पठानों का पीछा किया और बलात्कारित कुमारिकाओं को उनके चंगुल से छुड़ाया। कुमारिकाएँ पुनः अपने समाज में बस गईं लेकिन इस संघर्ष में राव सूरजमल को अपने प्राणों की आहुति देनी पडी। [29]

महारावल लूणकरण

जैसलमेर से 5 किमी दूर 'जैत बन्ध' के निर्माण का कार्य महारावल जैत सिंह द्वितीय के राज्यकाल (1497-1529) में आरम्भ हुआ। उसकी प्राण प्रतिष्ठा उनके पुत्र महारावल लूणकरण के राज्यकाल (1529-1551) में हुई। प्राण प्रतिष्ठा के समारोह में महारावल लूणकरण ने एक विशाल यज्ञ का आयोजन करवाया था जिसमें विगत आठ सौ वर्षों से बलपूर्वक मतान्तरित हुए हिन्दुओं की शुद्धि करवाई गई। इस यज्ञ में सिंध, मारवाड़ और कच्छ से भाग लेने अनेक मतान्तरित लोग आये थे। महारावल लूणकरण के समय मुगल बादशाह हुमायू जैसलमेर होता हुआ अमरकोट और ईरान की ओर भागा था। महारावल लूणकरण ने हुमायू की सेना को जैसलमेर में डेरा नहीं डालने दिया था।[30]

शेरशाह सूरी का साक्ष्य

जून 1543 में शेरशाह सूरी (1472-1545) द्वारा रायसेन दुर्ग (वर्तमान भोपाल जिले की सीमा पर) पर किये गए एक विश्वासघाती हमले में राजा पूरणमल और उनके सैनिकों का बलिदान हुआ। राजा पूरणमल ने कई मुस्लिम स्त्रियों का शुद्धिकरण किया था यह इस आक्रमण का एक कारण था। [31] वहाँ से अपनी राजधानी आगरा लौटते समय बीच में बरनावा (वर्तमान बागपत जिला) के शेखजादों ने शेरशाह सूरी से निवेदन किया कि उनका प्रदेश लूट लिया गया था और बासुदेव नामक राजपूत उनकी

औरतों को भगा कर ले गया था। हिन्दुस्तान में अपने राज्य के संबंध में जब शेरशाह सूरी ने अपने सरदारों से उनका अभिमत माँगा, तो वे बोले, 'यह उचित है कि विजयशालिनी झंडा दक्खन की ओर बढ़े, क्योंकि कुछ विद्रोही गुलाम अपने मालिकों की सत्ता से मुक्त होकर विद्रोह कर रहे हैं। शियाओं के पाखण्ड की तरह वे पवित्र वंश को गालियाँ दे रहे हैं। दक्खन के इस नए विधर्म को उखाड़ना प्रबल और भाग्यशाली लोगों के लिए अनिवार्य है।' इस पर शेरशाह ने कहा, 'आप लोगों ने जो कहा, वह सही और उचित है। सुल्तान इब्राहीम (लोदी) के समय से मैं देख रहा हूँ कि काफ़िर जमींदारों ने इस्लाम के देश को काफ़िरों से भर दिया है और मोमिनों की मस्जिदों और इमारतों का विध्वंस किया और वहाँ मूर्तियाँ स्थापित की। दिल्ली और मालवा का प्रदेश उनके हाथों में है।'[32] इस्लाम की परिभाषा में इस्लाम का त्याग करना सबसे बड़ा विद्रोह और पाखण्ड कहलाता है। उसके पहले आये बाबर और इब्राहीम लोदी आदि इस्लामी आक्रांताओं द्वारा किये गए व्यापक मतान्तरण के बाद भी शेरशाह सूरी को यह देश काफ़िरों से भरा मालूम हुआ, इससे व्यापक शुद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है।

जहाँगीर-कालीन घटना

कमर खान के बेटे कौकब की किसी संन्यासी से घनिष्टता थी। यह संन्यासी उसे हिन्दूधर्म और योगशास्त्र की शिक्षा देता था। इस 'पाप' में उसके दो भाई अब्दुल लतीफ़ और शरीफ़ भी शामिल थे। कुछ समय तक यह बात गुप्त रही लेकिन बादशाह जहाँगीर (1569-1627, राज्यकाल 1605-1627) के कानों तक यह खबर पहुँची। कौकब और शरीफ को बंदी बनाकर उन्हें कोड़े लगाये गये। अब्दुल लतीफ़ को बादशाह की उपस्थिति में एक सौ कोड़े लगाये गये। [33]

औरंगजेब-कालीन शुद्धि

औरंगजेब (1618-1707, राज्यकाल 1658-1707) ने बड़ी प्रामाणिकता से इस्लाम के कानून को अपनी प्रजा पर लागू किया। उसके राज्यकाल में हिन्दुओं को अपना धर्म निभाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसके बावजूद उसके राज्यकाल में भी शुद्धि के प्रयत्न हुए। पंजाब के होशियारपुर नगर के एक हिन्दू का इस्लाम में मतान्तरण हुआ था। वह लंबे समय तक मुस्लिम के नाते जालंधर में रहा। बाद में उसकी शुद्धि हुई। यह बात सार्वजनिक होने के बाद उसे बंदी बनाया गया। इसके विरोध में होशियारपुर के हिन्दुओं ने हड़ताल की। शुद्धिकृत व्यक्ति के प्रति हिन्दू समाज की सहानुभूति हुआ करती थी यह इस घटना का अर्थ है। [34]

मासिर–ए–आलमगीरी का लेखक साकी मुसतइद खाँ लिखता है, 'दि.18 अप्रैल 1669 दीन–रक्षक बादशाह के कानों तक खबर पहुँची कि ठट्ठा, मुल्तान और बनारस के प्रांतों में, विशेषकर बनारस में मूर्ख ब्राह्मणों को उनके विद्यालयों में उनकी तुच्छ पुस्तकों का विवरण करने की आदत लगी है। उनके द्वारा पढ़ाये जा रहे दुष्ट शास्त्र से परिचित होने की इच्छा से वहाँ दूर–दूर से भी हिन्दू और मुस्लिम, दोनों प्रकार के छात्र आते थे। यह सुनकर दीन–रक्षक ने प्रांतों के सभी राज्यपालों को फ़र्मान जारी किया कि वे काफिरों के विद्यालयों और मंदिरों का विध्वंस करें। उन्हें सख्ती से आदेश दिए गये कि वे मूर्तिपूजा की शिक्षा और प्रथा को पूर्णतया बंद करें।'[35] ध्यातव्य है कि औरंगजेब के शासन में भी भिन्न प्रांतों में ब्राह्मण निर्भयता से हिन्दू और मुस्लिम छात्रों को एकत्र धर्म की शिक्षा दे रहे थे। मुस्लिम छात्रों को हिन्दू धर्म की शिक्षा देना उनके शुद्धि की पूर्वसिद्धता थी यह अनुमान लगाना अनुचित नहीं होगा।

मुस्लिम स्त्रियों से विवाह

मुस्लिम स्त्रियों को नाच–गाना सिखाकर उन्हें राजपूतों द्वारा अखाड़ों (नृत्य–दलों) में भर्ती करने के उदाहरण हैं। कश्मीर में शाह मीर (राज्यकाल 1339–1342) ने अपनी कुछ बेटियों का विवाह ब्राह्मण सरदारों से किया था। सुल्तान महमूद शर्की (1436–1458) पर हिन्दू सरदारों को मुस्लिम स्त्रियाँ देने का आरोप लगाया गया था। सन् 1443 के बाद कालपी और चंदेरी (मालवा और बुन्देलखंड के बीच में बसा वर्तमान जिला अशोक नगर, मध्य प्रदेश का नगर) के मुस्लिम शासकों ने हिन्दू सरदारों को मुस्लिम स्त्रियाँ दी थी। [36] सन् 1512–1518 की अवधि में मालवा के सुल्तान महमूद खलजी द्वितीय के महल की स्त्रियाँ सुल्तान के नायक मेदिनी राय और अन्य राजपूत सरदारों के परिवार की सदस्य बनीं। [37]

कश्मीर के अपने प्रवास से लौटते समय शाहजहाँ (1592–1666, राज्यकाल 1628–1658) ने भदौड़ी (वर्तमान जिला ऊना, हिमाचल प्रदेश में) और भिम्बर (वर्तमान पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर का जिला) में मुस्लिम लड़कियों के हिन्दू युवकों से विवाह की प्रथा देखी। ये लड़कियाँ हिन्दू बनी थी और उनके पतियों के निधन के बाद सती हो जाया करती थी। इस प्रथा पर प्रतिबंध लगाने का फरमान जारी किया गया। ऐसे विवाह अवैध घोषित किये गए। इन शुद्धिकृत लड़कियों को छीनकर उनके पतियों को दण्डित करने का प्रावधान था। इस्लाम को कुबूल कर हिन्दू पति अपने विवाह को बचा सकता था। इस प्रथा को मिटाने के लिए पूरी ताकत लगाने के

निर्देश दिए गये।

सरहिंद (वर्तमान जिला फतेहगढ़ साहिब, पंजाब) के दलपत नामक हिन्दू युवक ने जैनब नामक मुस्लिम लड़की से विवाह कर उसका 'गंगा' नाम रखा था। अपनी संतान को उसने हिन्दू के नाते बड़ा किया था। और तो और, उसने छह मुस्लिम लड़कों और छह मुस्लिम लड़कियों को हिन्दू बनाया था। दलपत से उसकी पत्नी और बच्चे छीनने का आदेश निकाला गया। 'इस्लाम या मौत' यह पर्याय दलपत के सामने रखा गया। वीर दलपत ने इस्लाम कुबूल करने से इंकार किया। अत्यधिक क्रूरता से उसकी हत्या की गई।

हिन्दू सैनिकों, हिन्दू जनता और मुस्लिम युद्धबंदियों को गुलाम के नाते लेने-खरीदने पर शाहजहां ने प्रतिबंध लगाया। हिन्दू ऐसे मुस्लिम युद्धबंदियों को शुद्ध करेंगे यह उसे डर था।[38] मुस्लिम स्त्रियों से विवाह करने वाले जो हिन्दू पुरुष इस्लाम का स्वीकार नहीं करते थे, उन पर शाहजहाँ ने अर्थशुल्क लगाया था। इस्लाम को स्वीकार न करने वाले हिन्दू पुरुष अपनी पत्नियों को नहीं रख सकते यह नियम सन् 1635 में शाहजहाँ ने करते ही अकेले भदनोर में 5000 हिन्दुओं ने मतान्तरण किया। गुजरात में 70 और पंजाब में 400 हिन्दुओं ने इसी कारण मतान्तरण किया। मुस्लिम पुरुषों के साथ बलपूर्वक विवाह की गईं हिन्दू स्त्रियों को हिन्दुओं द्वारा छुड़ाने के भी उदाहरण हैं। शायद प्रतिशोध में कुछ हिन्दू राजा और सरदार अपने रनिवास में मुस्लिम स्त्रियाँ रखते थे। 'महोमेडन लोग उनके प्रदेश में हिन्दू स्त्रियों में हस्तक्षेप करते हैं, इसलिए मराठे मुस्लिम स्त्रियों को बंदी बनाते हैं' ऐसा साक्ष्य खफी खान और मनूची देते हैं। सिक्ख भी यही करते थे।[39]

दबिस्तान-ई मजाहिब

सन् 1665 में दबिस्तान-इ मजाहिब नामक फारसी पुस्तक लिखी गयी। इस पुस्तक के लेखक मुहम्मद मुहसिन फानी ने पटना, कश्मीर, लाहौर, सूरत, श्रीकाकुलम् आदि स्थानों का प्रवास किया था। उसने इस पुस्तक में कई पंथ-मजहबों का वर्णन किया है। सन् 1643 में दबिस्तान के लेखक की कीरतपुर (वर्तमान होशियारपुर, पंजाब में) में कल्याण भारती नामक हिन्दू संन्यासी से भेंट हुई। यह संन्यासी सुदूर पर्शिया में गया था और वहाँ मुस्लिमों के बीच रहकर मुस्लिम बना था। लेकिन वहाँ के शाह अब्बास सोफवी (1583-1628) का स्वैच्छाचारी जीवन देखकर ऐसे व्यवहार को अनुमति देने वाले मजहब को त्यागकर वह फिर से हिन्दू बना। उसका स्वदेशागमन और

संन्यासी के नाते उसका हिन्दू समाज के द्वारा किया हुआ स्वीकार ध्यातव्य है।[40] कई मुस्लिम वैष्णव वैरागी बने, इनमें मिर्जा सलाह और मिर्जा हैदर नामक दो सरदार थे यह जानकारी लेखक देता है।[41]

सन्दर्भ –

1) इलियट एण्ड डॉसन, खंड 1, पृ. 126
2) भंडारकर, पृ. 67
3) सचाउ, खंड 2, पृ. 162–163
4) टॉड, खंड 1, पृ. 266–267
5) इलियट एण्ड डॉसन, खंड 2, पृ. 32, 33
6) अमरजी, पृ. 112
7) आर्नल्ड, पृ. 210–211
8) इलियट एण्ड डॉसन, खंड 3, पृ. 211
9) इलियट एण्ड डॉसन, खंड 3, पृ. 215
10) इलियट एण्ड डॉसन, खंड 3, पृ. 223–224
11) इलियट एण्ड डॉसन, खंड 3, पृ. 90
12) नीलकंठ शास्त्री, पृ. 227
13) शर्मा श्रीराम, मार्च 1934, पृ. 140
14) इलियट एण्ड डॉसन, खंड 3, पृ. 365
15) रेउ, पृ.54–55
16) सारड़ा, पृ. 12
17) डे, उपेन्द्रनाथ, पृ. 137–138
18) किंग, पृ. 371–372
19) शर्मा, श्रीराम, फरवरी 1934, पृ. 142
20) टॉड, खंड 2, पृ.1221–1222
21) गर्ग, पृ. 423
22) गर्ग, पृ. 415–416
23) पारमू, पृ. 163
24) पारमू पृ. 173

25) डे, ब्रजेन्द्रनाथ, पृ. 655
26) पारमू, पृ. 192
27) दत्त, पृ. 353
28) पारमू, पृ. 197-201
29) टॉड, खंड 2, पृ. 952
30) शर्मा, नन्द किशोर, पृ.152
31) शर्मा, श्रीराम, मार्च 1934, पृ. 142
32) इलियट एण्ड डॉसन, खंड 4, पृ. 403-404
33) संगर, पृ. 173
34) शर्मा, श्रीराम, मार्च 1934, पृ. 141-142
35) इलियट एण्ड डॉसन, खंड 7, पृ. 184
36) सिंह, अल्फा एडिशन्स ईबुक
37) डे, उपेन्द्रनाथ, पृ. 286
38) संगर, पृ. 177
39) सिंह, अल्फा एडिशन्स ईबुक
40) फ़ानी, खंड 1, पृ.186
41) फ़ानी, खंड 2, पृ.193

संतों द्वारा धर्मरक्षा और शुद्धिकरण

शुद्धिकरण के इतिहास में संतों का योगदान पथप्रदर्शक है। ऐहिक संसार के प्रति निर्लिप्त भाव रखते हुए भी संत अपने आसपास के समाज के सुख-दुखों से अनछुए नहीं थे। हिन्दू धर्म और समाज को अक्षुण्ण रखने का श्रेय इस संत-परंपरा को जाता है।

स्वामी रामानंद

विशिष्टाद्वैत सिद्धांत के भाष्यकार, रामानंद संप्रदाय के संस्थापक, भक्ति-आंदोलन के पुरोधा, श्रेष्ठतम समाजसुधारक, संत-शिरोमणि स्वामी रामानंद (1299-1410) शुद्धि आंदोलन के अग्रदूत थे। उस समय दिल्ली में गयासुद्दीन तुगलक का शासन था। इस्लामी आतंक के कारण हिन्दुओं को धर्माचरण करना अशक्य हो गया था। इस स्थिति में स्वामी जी ने सुलतान के सामने हिन्दुओं की निम्न बारह माँगें रखकर उसे मनवाया।[1]

1. हिन्दुओं पर थोपा गया जिज़्या कर-भार समाप्त किया जाय
2. काशी एवं अन्य स्थानों पर हिन्दू मंदिरों का विध्वंस रोक दिया जाय
3. हिन्दुओं का बलपूर्वक मतान्तरण न किया जाय
4. गोहत्या पर प्रतिबन्ध हो
5. हिन्दू धर्म-ग्रंथों को जलाया न जाय
6. हिन्दुओं के धार्मिक अथवा घरेलू उत्सवों में बाधा उत्पन्न न की जाय
7. हिन्दू महिलाओं का तुर्कों द्वारा अपहरण न हो
8. मंदिरों के घंटानाद पर प्रतिबन्ध न हो
9. प्रयाग आदि स्थानों में कुंभ मेले पर प्रतिबन्ध न हो
10. कथा-कीर्तन पर प्रतिबन्ध न हो
11. हिन्दुओं के धर्मपालन पर प्रतिबन्ध न हो
12. विवाह के समय दूल्हे को मस्जिद के सामने पालकी से उतरना न पड़े

उस कठिन समय में मतान्तरित हिन्दुओं की शुद्धि का युगप्रवर्तक कार्य स्वामी जी ने किया। मुहम्मद तुगलक ने 34 हजार राजपूतों को मुस्लिम बनाया था। इनमें

अयोध्या नरेश राजा श्री हरिसिंह भी थे। इन हजारों मतान्तरित राजपूतों को स्वामी जी ने अयोध्या में विलोम-मंत्र द्वारा समारोहपूर्वक पुनः हिन्दू बनाया। [2] 'भविष्यपुराण' में इसका वर्णन यूँ किया गया है -

कण्ठे च तुलसी माला जिव्हा राममयी कृता।
म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानन्दप्रभावतः।।

(अर्थात्, स्वामी रामानंद के इस विचार से प्रेरित होकर अनेक म्लेच्छों ने वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया था और अब उनके गले में तुलसी की माला, जिव्हा पर राम का नाम तथा माथे पर वैष्णव तिलक था)। [3]

संत रैदास

संत रैदास (1450-1520) को मुस्लिम बनाने से उनके हजारों भक्त मुस्लिम बन जायेंगे ऐसा सोचकर उन पर मुस्लिम बनने के लिए अनेक प्रकार के दबाव आए, किन्तु उनकी श्रद्धा और निष्ठा अटूट थी। सिकंदर लोदी ने उन्हें कठोर दण्ड देने की धमकी दी तो उन्होंने निर्भीकता के साथ उत्तर दिया -

मैं नहिं दब्बू बाल गँवारा, गंग त्याग गहूँ ताल किनारा
प्राण तजूँ पर धर्म न देऊँ, तुमसे शाह सत्य कह देऊँ
चोटी शिखा कबहुँ नहिं त्यागूँ, वस्त्र समेत देह भल त्यागूँ
कंठ कृपाण का करौ प्रहारा, चाहे डुबावो सिन्धु मंझारा

सदना पीर इन्हें मुस्लिम बनाने आया था, किन्तु इनकी ईश्वर-भक्ति और आध्यात्मिक-साधना से प्रभावित होकर, रामदास नाम से शिष्य बन गया। [4]

श्री चैतन्य महाप्रभु

श्री चैतन्य महाप्रभु (1486-1534) की जीवन-लीला के तीन भाग- आदि लीला (जन्म से संन्यास-ग्रहण तक, पहले 24 वर्ष), मध्य लीला (अगले छह वर्ष, जब उन्होंने परिभ्रमण किया) और अंत्य लीला (अंतिम 18 वर्ष, जब उनका निवास पुरी में था) बताए जाते हैं।

एक बार श्री चैतन्य महाप्रभु और उनके चार शिष्य मथुरा से प्रयाग जा रहे थे। कुछ दूरी पार करने के बाद वे विश्राम के लिए किसी पेड़ की छाँव में बैठ गए। एकाएक श्री चैतन्य महाप्रभु को समाधि अवस्था प्राप्त हुई और वे निश्चेष्ट हो गए। तभी वहाँ दस मुस्लिम घुड़सवार आ पहुँचे। वे उन चार शिष्यों को डाकू समझ बैठे

जिन्होंने उस निश्चेष्ट पुरुष को विष दिया हो। वे उन्हें बंदी बनाने ही वाले थे कि श्री चैतन्य महाप्रभु की समाधि भंग हुई। वास्तविकता पता चलने पर उन दस मुस्लिमों में से एक काले वस्त्र पहने 'पीर' के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु की दीर्घ चर्चा हुई। उससे पीर प्रभावित हुआ। उसका 'रामदास' ऐसा नामकरण किया गया। एक और मुस्लिम, जिसका नाम 'बिजुली खान' था, हिन्दू बना और बाद में 'महाभागवत' नाम से विख्यात हुआ। कृष्णदास कविराज (जन्म 1496) विरचित 'चैतन्य चरितामृत' के मध्य लीला में इस घटनाक्रम का वर्णन है।[5]

श्री चैतन्य महाप्रभु के अंतरंग शिष्य ठाकुर हरिदास की कथा भी प्रेरणादायी है। बंगाल के जेस्सोर जिले के बुढ़न गाँव में एक मुस्लिम परिवार में उनका जन्म हुआ था। बचपन में ही उन्होंने अपना गाँव छोड़ा और बेणापोल के पास जंगल गए जहाँ वे श्रीकृष्ण का प्रतिदिन तीन लाख बार नाम स्मरण करते थे। उनकी यह परिपाटी जीवन भर चली। श्री चैतन्य महाप्रभु से संपर्क में आने से पहले ही वे हिन्दू बने थे यह ध्यान देने योग्य है। एक बार शांतिपुर के प्रवास में उनके नाम-संकीर्तन के प्रभाव को देखकर वहाँ के मुस्लिम शासक ने उनको बुलाया और हिन्दू रीतियों का त्याग करने का आदेश दिया। जब ठाकुर हरिदास ने इससे इंकार किया तो उन्हें बाइस स्थानों पर ले जाया गया। वहाँ के बाजारों में उनको सार्वजनिक रूप से कोड़े लगाए गए लेकिन उनका नाम-संकीर्तन अविरत चलता रहा।[6]

ठाकुर हरिदास के सम्बन्ध में एक हृदयस्पर्शी प्रसंग बताया गया है। एक बार, श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करते ही ठाकुर हरिदास ने उनको दंडवत किया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें उठाकर आलिंगन दिया। तब ठाकुर हरिदास ने कहा, '**प्रभु ना चुनियो मोरे, मुनि नीच, अस्पृश्य, परम पामरे**' (प्रभु, मुझे छूना नहीं, मैं नीच, अस्पृश्य, परम पामर)।' तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, '**तोमा स्पर्शी पवित्र ह इते, तोमार पवित्र धर्म नाहिक आमाते**' (पवित्र होने के लिए ही मैं तुम्हें स्पर्श करता हूँ, क्योंकि तुम्हारा पवित्र धर्म मुझमें नहीं)।'[7] ठाकुर हरिदास की स्तुति करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु बोले, '**निरंतर कर चारी वेद अध्ययन, द्विज-न्यासी हैते तुमी परम पावन**' (तुम चारों वेदों का निरंतर अध्ययन करते हो, तुम किसी ब्राह्मण या संन्यासी से परम पावन हो)।'[8]

श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्यों में से एक ठाकुर हरिदास ही थे जिनके घर जाकर प्रभु स्वयं उनसे प्रतिदिन मिलते थे। वे एकमात्र शिष्य थे जो प्रभु के पहले परलोक

सिधार गए। उनकी मृत्यु के बाद, श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके मृत शरीर को स्वयं उठाया और समुद्रतट पर उनकी समाधि बनाई।[9]

सन्दर्भ -

1) जोशी, पृ. 31

2) जोशी, पृ. 69, 86

3) कुणाल, पृ. 143

4) शर्मा, कृष्ण गोपाल, पृ. 170–171

5) कृष्णदास कविराज, अध्याय 18.162– 212

6) मजुमदार, पृ. 254

7) कृष्णदास कविराज, अध्याय 11. 188, 189

8) कृष्णदास कविराज, अध्याय 11. 191

9) मजुमदार पृ. 232

मराठों द्वारा शुद्धिकरण

मराठों ने शुद्धिकरण की व्यवस्था खड़ी की, इसलिए उनके शुद्धिकरण के प्रयासों का विशेष महत्त्व है।

छत्रपति शिवाजी महाराज

छत्रपति शिवाजी महाराज (1630–1680, राज्यकाल 1674–1680) के आगमन के पूर्व ही पुर्तगाली–शासित गोवा में ईसाइयत में बलपूर्वक मतान्तरित लोग अवसर पाते ही पुनः मतान्तरण–पूर्व विचारों का अनुसरण करते थे। दि. 10 अक्टूबर 1547 को 'सोसायटी ऑफ जीजस' के संस्थापक इग्नेशियस लॉयोला को लिखे पत्र में जेसुइट पादरी निकोलाउ लॅन्सीलोटो लिखता है, 'ईसाई बनने वाले इस देश के लोग केवल ऐहिक लाभों के लिए ऐसा करते हैं, जैसा कि गुलामी का राज जिस भूमि पर हो, होना अपरिहार्य है। मूर या हिन्दू गुलाम अपने पुर्तगाली मालिकों से मुक्ति पाने के लिए बपतिस्मा मांगते हैं। अत्याचारियों से सुरक्षा पाने के लिए या पगड़ी, शर्ट या किसी तुच्छ वस्तु के लिए, या फाँसी से छुटकारा पाने के लिए या ईसाई महिलाओं का साथ पाने के लिए अन्य (बपतिस्मा) करते हैं। जो व्यक्ति प्रामाणिक धारणा से (ईसाई) श्रद्धा को स्वीकार करता है, उसे मूर्ख समझा जाता है। (ईसाई) संस्कार की जब और जहाँ वे इच्छा व्यक्त करते हैं, उन्हें बिना किसी उपदेश के बपतिस्मा दिया जाता है और कई लोग उनके पूर्व पेगन विचार पर लौट आते हैं।'[1]

छत्रपति शिवाजी महाराज के एक सरदार और पत्नी सईबाई के भाई बजाजी नाईक निंबालकर ने आदिलशाह के दबाव के कारण इस्लाम को स्वीकार किया था। छत्रपति शिवाजी महाराज ने उसे नीरा–नरसिंगपुर में पुनः शुद्ध करवाया ही, साथ ही अपनी बेटी सखुबाई का विवाह बजाजी के बेटे महादजी से करवाया।[2] इस शुद्धि की पहल छत्रपति शिवाजी महाराज की माता जीजाबाई ने की थी ऐसा कहा गया है।[3]

सन् 1659 में छत्रपति शिवाजी महाराज ने नेतोजी पालकर (1620–1681) को सर–नौबत (अश्वदल प्रमुख) नियुक्त किया। वह इस पद पर जनवरी 1666 तक था। दि. 16 जनवरी 1666 के दिन छत्रपति शिवाजी महाराज ने पन्हाला किले पर धावा

बोल दिया। लेकिन आक्रमण के समय नेतोजी पालकर योजनानुसार वहाँ नहीं पहुँचा। छत्रपति शिवाजी महाराज की डाँट मिलने पर नेतोजी रुष्ट हुआ। आदिलशाह से चार लाख सोने के सिक्के लेकर वह उसकी सेवा में चला गया। दि. 22 मार्च 1666 को मिर्जा राजा जयसिंह ने पाँच हजारी मनसबदारी, जागीर एवं रु. 50000 दिलवाकर उसे मुगलों की ओर आकर्षित किया। दि. 18 अगस्त 1666 के दिन, छत्रपति शिवाजी महाराज औरंगजेब की कैद से आगरा से अद्भुत रीति से भाग गए। इससे क्रुद्ध होकर उस समय मुगल मनसबदार रहे नेतोजी पालकर को बंदी बनाकर उसे दिल्ली पेश करने का आदेश औरंगजेब ने दिया। दिल्ली के कोतवाल ने उसे मृत्यु से बचने के लिए तीन दिन का समय दिया जिसके अंदर उसे मुस्लिम बनना था। [4] कारागार में कुछ दिन बिताने के बाद नेतोजी ने फरवरी 1667 में बादशाह को निवेदन किया कि यदि उसे जीवनदान दिया गया तो वह इस्लाम कुबूल करने को तैयार है। उसका खतना किया गया और 'मुहम्मद कुली खान' नाम रखा गया। उसकी दो पत्नियों को दिल्ली लाया गया और बादशाह के आदेशानुसार उन्हें इस्लाम कुबूल करने को कहा गया। उनके यह करने से मना करने पर, बादशाह ने नेतोजी को उन्हें मनाने का आदेश दिया और उसके बाद भी उनके मुस्लिम बनने से इंकार करने पर, किसी मुस्लिम महिला को पत्नी के रूप में लेने को कहा। नेतोजी ने अपनी पत्नियों को मुस्लिम बनने को राजी किया। फिर बादशाह ने उन्हें इस्लामी पद्धति से दोबारा विवाह करने का आदेश दिया और रु. 5000 के आभूषण भेंट दिए। नेतोजी या मुहम्मद कुली खान को जून 1667 में काबुल भेजा गया।[5] नेतोजी ने पलायन करने का एक असफल प्रयत्न किया था। सन् 1676 में उसे दख्खन भेजा गया था। इस बार वह सफलतापूर्वक पलायन कर शिवाजी से मिला। प्रायश्चित देकर उसे 19 जून 1676 के दिन पुनः हिन्दू किया गया। [6]

शुद्धि व्यवस्था

'हिन्दवी स्वराज्य' में असैनिक, आपराधिक एवं धार्मिक विषयों के सम्बन्ध में न्यायशास्त्र निर्माण करने का कार्य छत्रपति शिवाजी महाराज के कार्यकाल में ही शुरू हुआ। सन् 1661 से छत्रपति शिवाजी महाराज की सेवा में आए रघुनाथपंडित को 1665 में 'पंडितराव' यह उपाधि दी गई। भ्रष्ट किए गए व्यक्तियों को शुद्ध करने के लिए निम्न चार व्यवस्थाएँ थीं –

1) **ब्रह्म सभा** – कराड़, माहुली, वाई करवीर, पैठण, नासिक जैसे पवित्र स्थानों पर आयोजित ब्राह्मणों की सभा

2) जाति-सभा

3) राजा और उसका पेशवा (प्रधान)

4) संकेश्वर और कोल्हापुर स्थित शंकराचार्य के मठ।

इन चार व्यवस्थाओं के 'शुद्धिकरण' के काम को समन्वित करना यह 'पंडितराव' का कार्य था।

शुद्धिकरण में 'गोत' (गोत्र) का भी महत्त्व था। शुद्ध किए गए व्यक्ति को उसकी जाति में स्वीकार किए जाने की प्रक्रिया को 'गोताई' कहा जाता था। 'गोताई' के लिए उस गाँव एवं परगना के वतनदार और देशकों से बनी 'गोतसभा' की स्वीकृति आवश्यक हुआ करती थी। इस सभा में 'शुद्धिकरण' के लिए निर्धारित शुल्क जमा किया जाता था और सरकारी मुहर लगा हुआ अभिलेख उस व्यक्ति को दिया जाता था। धर्मशास्त्रों द्वारा बताए गए प्रायश्चित के सम्बन्ध में ब्रह्म सभा और शासकीय अधिकारियों से परामर्श किया जाता था। शुद्धिकरण का अधिकृत प्रमाणपत्र दिया जाता था जिसका पंजीयन स्थानीय कोतवाली में किया जाता था।[7]

सन् 1665 और 1670 के बीच छत्रपति शिवाजी महाराज ने पुर्तगाल-शासित प्रदेशों पर विजय प्राप्त की। इन प्रदेशों के मतान्तरित लोगों को शुद्ध कराने के आदेश उन्होंने ब्राह्मणों को दिए। सन् 1667 में रोमी कैथोलिकों को छोड़कर अन्य सभी मतावलम्बियों को गोवा से निष्कासित करने का आदेश वाइसरॉय ने जारी किया। हिन्दुओं की सामूहिक हत्या की आशंका थी। इसके प्रतिशोध में छत्रपति शिवाजी महाराज ने बारदेश (गोवा) के चार मिशनरियों को बंदी बनाकर उन्हें हिन्दू बनने का आदेश दिया। उनके इंकार करने पर उनकी हत्या की गई। तभी वाइसरॉय ने अपना आदेश वापस लिया।[8] यह घटना तथ्याधारित नहीं ऐसी भी मान्यता है।[9] सन् 1675 में छत्रपति शिवाजी महाराज ने बलपूर्वक मतान्तरण एवं अनाथों की संपत्ति का पुर्तगाली सरकार द्वारा अधिग्रहण के विषयों को उठा लिया था।[10]

छत्रपति संभाजी महाराज

छत्रपति शिवाजी महाराज की यह नीति उनके पुत्र छत्रपति संभाजी महाराज (1657-1689, राज्यकाल 1680-1689) ने और भी दृढ़ता से आगे चलाई। मतान्तरित जातियों को शुद्ध करने का निर्णय ब्राह्मणों पर न छोड़ते हुए या ऐसे शुद्धिकरण को स्वीकृति देने का दायित्व उन जातियों पर न छोड़ते हुए, मतान्तरित जातियों के शुद्धिकरण के आदेश ऐसी जातियों को दिए गए। पुर्तगालियों से कोई समझौता करते समय अनाथों

को मतान्तरित न किया जाय यह शर्त छत्रपति शिवाजी महाराज एवं छत्रपति संभाजी महाराज दोनों रखते थे। पुर्तगालियों के विरुद्ध छेड़े गए अभियानों में छत्रपति संभाजी महाराज ने कई चर्चों का देवी के मंदिरों में रूपांतरण किया। उन्होंने कई ईसाई मठों का विध्वंस भी किया।[11]

हरसुल, औरंगाबाद निवासी कुलकर्णी नामक ब्राह्मण का बलपूर्वक मतान्तरण कर उसे मुगल सरकार की सेवा करने को बाध्य किया गया था। पाँच वर्षों तक कई पदों पर रहकर वह समृद्ध हुआ। लेकिन इस लौकिक प्रतिष्ठा से उसे मन को शांति नहीं मिल सकी। वह पुनः हिन्दू धर्म में वापस आना चाहता था। अपने किए पापों का प्रायश्चित करने के सम्बन्ध में उसने कई मंत्री, ब्राह्मण एवं गणमान्य व्यक्तियों के दरवाजे खटखटाये लेकिन व्यर्थ। छत्रपति संभाजी महाराज के मंत्री कवि कलश के माध्यम से उसने महाराज की कृपा प्राप्त की। कवि कलश ने उसकी याचना को स्वीकार किया। उसकी जाति एवं धर्मशास्त्रों द्वारा निर्धारित प्रायश्चित के बाद उसे समाज में पुनः प्रवेश दिया गया।[12] दि.16 मार्च 1686 के दिन छत्रपति संभाजी महाराज ने सातारा दरबार में उसके शुद्धिकरण की आज्ञा दी।

चौल (वर्तमान जिला रायगढ़, महाराष्ट्र) के पाठारे पंच कलसे नामक जाति के गोत ने मराठा सरकार से निवेदन किया कि उनकी जाति के 40-50 परिवारों को कुछ पीढ़ियों पहले ईसाई बनाया गया था। उनमें से 10-20 परिवार चौल आकर बड़े आराम से बसे हुए हैं। कुछ दिन बाद, उन्हें शुद्ध होने के इच्छा हुई। उन्होंने इस बात के लिए कई प्रकार से गोत पर दबाव डालना शुरू किया लेकिन गोत उनके शुद्धिकरण पर असहमत था। गोत का निवेदन था कि यद्यपि मतान्तरितों के द्वारा इच्छा व्यक्त करने पर उनके शुद्धिकरण का आदेश राजा ने दिया था और उसका वे सम्मान करना चाहते थे, फिर भी इन लोगों के शुद्धिकरण में कठिनाई थी। यदि यह मतान्तरितों की पहली पीढ़ी होती, तो बात सरल होती। लेकिन चूंकि कई पीढ़ियाँ बीत चुकी थीं और इस बीच अनुलोम, प्रतिलोम विवाह हुए थे। इसलिए ऐसे मतान्तरितों को स्वीकृत करना 'शुद्ध' जाति का अपमान हो जाता। इस बात का निर्णय राजा की सद्बुद्धि पर सौंपा गया। राजा ने इस बात को आगे नहीं बढ़ाया। लेकिन, कुछ समय बाद इन मतान्तरितों ने (जिनका उल्लेख 'कटिकोम' किया गया) राजा (संभवतः छत्रपति संभाजी महाराज) से पुनः अपने शुद्धिकरण की प्रार्थना की। इन मतान्तरितों को पुनः हिन्दू किया जाय ऐसा आदेश राजा ने जारी किया। पूरी जाति के सहभोज का आयोजन करना था जिसमें राजा एवं गोत के

सदस्यों के साथ इन शुद्धिकृत लोगों ने भोजन करना था। लेकिन गोत के नेताओं ने छत्रपति संभाजी महाराज को निवेदन किया कि गर्भवती महिलाओं सहित 'कटिकोम' के सभी सदस्यों ने काशी यात्रा कर वहाँ से शुद्ध होने का अनुमति-पत्र ले आना चाहिए। इसलिए शुद्धिकरण की यह बात स्थगित हुई। यहाँ छत्रपति संभाजी महाराज कई पीढ़ियों तक मतान्तरित परिवारों के शुद्धि के पक्षधर थे यह ध्यान देने योग्य है। [13]

उत्तरवर्ती मराठों के प्रयास

पुताजी बिन मुधोजी वडगर नामक मराठा सैनिक सूरत में मुगलों द्वारा बंदी बनाकर मतान्तरित किया गया था। उसने संभाजी पुत्र छत्रपति शाहू महाराज (1682-1749, राज्यकाल 1708-1749) के सामने पश्चाताप व्यक्त किया। सातारा में छत्रपति शाहू महाराज के दरबार द्वारा उसके शुद्धिकरण की राजाज्ञा दी गई (1721)। धोबी जाति के संभाजी गड़कर को फिरंगियों ने मतान्तरित किया। छत्रपति शाहू महाराज ने उसका शुद्धिकरण करवाया और जाति ने उसे स्वीकारा।[14]

सन् 1739 में पुर्तगालियों ने वसई किले पर अधिकार जमाया। भंडारी, क्रियापल और मोंगल जाति के हिन्दुओं का मतान्तरण कर उन्हें किले में नौकरियाँ दी गईं। मतान्तरित जातियों में से जो संपन्न थी, उनके सदस्य सन् 1749-1750 में सरकार को शुल्क देकर शुद्ध हुए। लेकिन कुछ जातियाँ गरीब थी। उनके सदस्य मतान्तरित अवस्था में ही रहे। सन् 1815 में पेशवा बाजीराव द्वितीय (1775-1851, शासनकाल 1795-1818) ने उन पर मात्र रु. 25 अर्थशुल्क लागू कर उन्हें शुद्ध करवाने की आज्ञा दी।[15]

सन् 1828 में हैजा की महामारी फैली। देवी माँ का प्रकोप समझकर वसई के ओरप, आगरी, भंडारी जाति के मतान्तरित हिन्दुओं ने हिंदू धर्म में पुनः प्रवेश का निश्चय किया। शंकराचार्य नित्यानंद सरस्वती ने उनके इस निर्णय का स्वागत किया। उन्होंने इन शुद्धिकृत लोगों से भिक्षा लेकर अपना समर्थन व्यक्त किया। लेकिन वसई के ब्राह्मणों ने उनके अनुष्ठान करने से इंकार किया। शंकराचार्य ने आज्ञापत्र निकालकर वसई के ब्राह्मणों से इन शुद्धिकृतों को स्वीकार करने को कहा। धर्मशास्त्रों का आधार लेकर पेशवा ने इन लोगों को पुनः हिन्दू धर्म में प्रवेश दिलाया।[16]

सोलहवीं और सत्रहवीं सदी के ब्राह्मणों ने सामूहिक शुद्धिकरण के कई सरल उपाय प्रयुक्त किए थे। उदाहरण के तौर पर, गोकुलाष्टमी के दिन मतान्तरितों का समुद्र-स्नान या उन पर गंगाजल छिड़कना ऐसे उपाय किए जाते थे। इसके जवाब में ईसाई मिशनरी समुद्रतट पर क्रूस गाढ़ने लगे। ब्राह्मण भी ऐसे स्थानों को टालकर अन्य

स्थानों पर सामूहिक स्नान के कार्यक्रम करते रहे। वसई (वर्तमान जिला पालघर, महाराष्ट्र) में एक प्राचीन सरोवर में स्नान के कार्यक्रम गुप्त रूप से किए जाते। गोवा में भी 'माधव तीर्थ' नामक सरोवर ऐसे ही उपयोग में लिया जाता था।[17] मतान्तरित लोगों को शुद्ध कर उन्हें स्वजाति में सम्मिलित करने वाले ब्राह्मणों के अर्थार्जन के लिए मराठों ने अर्थशुल्क निर्धारित किया था। ब्राह्मणों को यह सहायता मिलने के कारण अनेक वर्षों तक आगरी और भंडारी जाति के अनेक लोग इन पलशे ब्राह्मणों की सहायता से शुद्ध हुए। ऐसी शुद्धि के सन् 1812 और 1815 के दो अनुज्ञा-पत्र पेशवाओं के अभिलेखों में उपलब्ध हैं। सौ वर्षों से भी अधिक काल तक मतान्तरित रहे लोगों की शुद्धि पेशवाओं के शासनकाल में होने के उदाहरण हैं।[18]

छत्रपति शिवाजी महाराज के सौतेले भाई और तंजावर के मराठा राज्य के संस्थापक छत्रपति व्यंकोजी महाराज के पुत्र छत्रपति शहाजी महाराज (1670-1711, राज्यकाल 1682-1711) ने शुद्धि का अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया। उस समय जेसुइटों ने अकथ्य अत्याचार कर तंजावर के सैकड़ों हिन्दुओं को ईसाई बनाया था। तंजावर के भोंसले वंशीय राजा ने इन मतान्तरितों के शुद्धिकरण को राजदण्ड का बल दिया। राजा द्वारा बुलाई गई परिषद् ने निम्न निर्णय लिए -

1. ईसाई समझे जाने वाले और स्वयं को ऐसा कहने वाले लोगों की संपत्ति राज्य द्वारा अधिगृहीत की जाएगी। उन्हें तथा उनके पादरियों को बंदी बनाया जाय।
2. अपनी मुक्तता पाने के लिए इन बंदियों ने फिर से मंदिरों में पूजा करनी चाहिए, किसी प्रकार से ईसाइयत का पालन नहीं करना चाहिए और अपनी जाति की उच्चता के अनुसार अर्थदंड देना चाहिए।
3. सभी चर्चों को धराशायी किया जाय।
4. ईसाई होने के बावजूद जो लोग इसका इंकार करेंगे, उनके सम्बन्ध में हस्तक्षेप न किया जाय, यदि वे मंदिरों में पूजा करते हैं एवं ईसाई उत्सवों से परहेज रखते हैं और सभी हिन्दू अनुष्ठान करते हैं।

लगभग तीन हजार मतान्तरित लोगों को बंदी बनाया गया था। इनमें से लगभग एक हजार लोगों ने अर्थदंड देकर स्वयं को मुक्त कराया। इनसे अधिक संख्या में लोगों ने पलायन किया, उनकी संपत्ति का अधिग्रहण किया गया।[19]

सन्दर्भ -

1) मेहेंदले, , पृ. 98

2) सरकार, पृ. 332

3) दिवेकर, पृ. 23-24

4) सरकार, पृ.131

5) मेहेंदले, पृ. 341

6) मेहेंदले, पृ. 511

7) कुलकर्णी, मिडीवल मराठा कंट्री, पृ. 8-9

8) कुलकर्णी, मिडीवल मराठा कंट्री, पृ. 4-5

9) मेहेंदले, पृ. 352

10) कुलकर्णी, मिडीवल मराठा कंट्री, पृ. 5

11) बेंद्रे, पृ. 67-68

12) कुलकर्णी, मिडीवल महाराष्ट्र, पृ. 136

13) कुलकर्णी, मिडीवल महाराष्ट्र, पृ. 138

14) कुलकर्णी, मिडीवल मराठा कंट्री, पृ. 8

15) चित्राव, पृ. 30

16) कुलकर्णी, मिडीवल मराठा कंट्री, पृ. 9,10

17) कुलकर्णी, मिडीवल मराठा कंट्री, पृ. 8

18) चित्राव, पृ. 28-32

19) मनूची, पृ. 318, 329-333

शुद्धिकरण में कार्यरत संगठन

उन्नीसवीं सदी में अपने देश में ऐसे अनेक संगठनों का निर्माण हुआ जिन्होंने शुद्धिकरण के कार्य को प्राथमिकता दी। शुद्धिकरण का कार्य केवल व्यक्तिगत स्तर पर न रहते हुए व्यापक और सामूहिक रूप से होने लगा।

आर्यसमाज

महर्षि दयानन्द सरस्वती

ब्रिटिश शासन-काल में विधर्मियों को शुद्ध कर उन्हें पुनः हिन्दू समाज में सम्मिलित करने का कार्य महर्षि दयानन्द सरस्वती (12 फरवरी 1824-30 अक्टूबर 1883) ने किया। हालाँकि उन्होंने स्वयं शुद्धि का कोई विशिष्ट संस्कार नहीं बताया, लेकिन शुद्धि सही होने का सिद्धांत उन्होंने रखा। उनके इस सिद्धांत को आर्यसमाज ने बाद में व्यापकता से क्रियान्वित किया। सन् 1877 के पंजाब के अपने प्रवास में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शुद्धि का प्रश्न सर्वप्रथम उपस्थित किया। मिशन स्कूल के ब्राह्मण शिक्षक रामशरण का मतान्तरण उन्होंने रोका। स्वामी दयानन्द सरस्वती के द्वारा स्वयं शुद्ध कराने के तीन उदाहरण अभिलिखित हैं। पंजाब में आगमन के छह महीनों के अंदर जालंधर में उन्होंने शुद्धि पर भाषण दिया और एक ईसाई सज्जन की शुद्धि की। खड़ग सिंह नामक केशधारी सिख जो सहजधारी बना था, बाद में ईसाई हुआ। स्वामी जी से मिलने के बाद वह हिन्दू बना (कुछ वर्षों बाद वह फिर से ईसाई बना)। सन् 1879 में देहरादून में मुहम्मद उमर नामक जन्मजात मुस्लिम को शुद्ध कर स्वामी जी ने उसे 'अलखधारी' नाम दे दिया।[1] ध्यातव्य है कि मूल सहारनपुर के निवासी अलखधारी देहरादून में ठेकेदार का काम करते थे। सन् 1914 में उनकी मृत्यु तक वे आर्यसमाज के निष्ठावान अनुयायी रहे और उसे नियमित रूप से दान करते। इसी निष्ठा के कारण निर्धनावस्था में उनका निधन हुआ। आर्यसमाज ने उनके अंतिम संस्कार की व्यवस्था की।[2] स्वामी जी के भाषणों से अनेक हिन्दू, जो मतान्तरित होने जा रहे थे, हिन्दू बने रहे। अमृतसर के 40 छात्र आंशिक ईसाई बने थे; वे अपने आप को 'बिना-बपतिस्मा के ईसाई' कहने लगे थे और उन्होंने 'प्रेयर सोसायटी' भी शुरू की थी। स्वामी जी के

कारण ये छात्र हिन्दू बने रहे। [3] स्वामी जी का प्रभाव ऐसा विलक्षण था कि कुछ युरोपीय ईसाई हिन्दू बने। उदा. पुलिस इन्स्पेक्टर जॉन मोंटगोमरी हॅमिल्टन (सुख लाल); ईसाई अनाथालय में शिक्षक मार्टिन लूथर, ईसाई महिला और उसके दो बच्चे।

आद्य हुतात्मा आर्य-पथिक पंडित लेखराम

आर्य समाज के प्रचारक, महर्षि दयानन्द जी के चरित्रकार आर्य पथिक पंडित लेखराम (1858-1897) का नाम शुद्धि आंदोलन के इतिहास में आद्य हुतात्मा होने के कारण अमर है। सन् 1880 में लेखराम जी ने पेशावर आर्यसमाज की स्थापना तो की थी, लेकिन सैद्धान्तिक स्पष्टता की खोज में वे 17 मई 1880 को महर्षि दयानंद से अजमेर में पहली (और अंतिम बार) मिले। 'क्या अन्य मतावलंबियों को शुद्ध करना चाहिए?' यह प्रश्न लेखराम जी द्वारा स्वामी जी से पूछते ही, उत्तर मिला, 'अवश्य शुद्ध करना चाहिए!' स्वामी जी के उपदेश से लेखराम जी के विचार दृढ़ हुए और वे धर्मकार्य को समर्पित हुए। लेखराम जी का ईसाइयत और इस्लाम पर गहरा अध्ययन था। उस समय पंजाब के कादियान गाँव के निवासी मिर्जा गुलाम अहमद (1835-1906) ने स्वयं को मसीहा घोषित किया। वह स्वयं को कल्कि अवतार बताकर हिन्दुओं को भ्रमित कर रहा था। उसके अनुयायियों को अहमदिया कहा जाने लगा। उसके दुष्प्रचार का लेखराम जी ने भाषणों और लेखों द्वारा सटीक खंडन किया। अहमदिया दुष्प्रचार की चपेट में आकर जम्मू निवासी ठाकुरदास मुस्लिम होने जा रहा था। लेखराम जी ने उसे समझा-बुझाकर मुस्लिम बनने से परावृत्त किया। दि. 2 दिसंबर 1885 को मिर्जा ने कादियान निवासी विष्णुदास को धमकाया कि यदि वह मुस्लिम न बना तो एक वर्ष के अंदर मृत्यु को प्राप्त होगा। लेखराम जी के कारण ही भयभीत विष्णुदास हिन्दू ही बना रहा। सन् 1888 में लेखराम जी के प्रभावशाली लेखन के कारण अजमेर निवासी अब्दुल रहमान 'सोमदत्त' नाम लेकर हिन्दू धर्म में प्रविष्ट हुआ। इस्लाम और ईसाइयत पर लेखराम जी के तथ्यात्मक लेखन से सिंध के अनेक युवा जो मुस्लिम या ईसाई बनने जा रहे थे, हिन्दू बने रहे। लाड़काना (सिंध) में बलपूर्वक मुस्लिम बनाए गए सैकड़ों हिन्दुओं को लेखराम जी ने शुद्ध किया। दि. 5 अगस्त 1894 को उन्होंने सीबी (बलुचिस्तान) में दीन मुस्तफ़ा और मुहम्मद मुस्तफा नामक दो मुस्लिमों को सैकड़ों हिन्दुओं की उपस्थिति में शुद्ध किया। मार्च 1895 के सियालकोट के प्रवास में उन्होंने इस्लाम का खंडन और धर्म का महत्त्व बताकर इस्लाम की चपेट में आए सैकड़ों सिक्खों को बचाया। अगस्त 1895 में खन्ना (लुधियाना) में श्रीराम सारस्वत नामक

ब्राह्मण, जो ईसाई बना था, को 500 लोगों की उपस्थिति में शुद्ध किया। मुल्ला-मौलवी-पादरियों को चुनौती देने वाले, सैकडों मतान्तरितों को शुद्ध करने वाले इस महान धर्मवीर की हत्या शुद्ध होने के बहाने से आए एक मुस्लिम ने 6 मार्च 1897 (ईद) के दिन की। उनके रक्त बिन्दुओं से पं. भोजदत्त शर्मा (आगरा), साधु योगेंद्रपाल तथा लाला वजीरचंद 'विद्यार्थी' जैसे अनेकानेक वीर आर्य प्रचारक निर्माण हुए। [4]

आर्य समाज द्वारा शुद्धि के दो कालखंड

सन् 1883 में हुई महर्षि दयानन्द की मृत्यु के बाद आर्य समाज के शुद्धिकार्य के 1883-1900 और 1900-1925 यह दो महत्त्वपूर्ण कालखंड समझे जाते हैं। पहले कालखंड में इस्लाम और ईसाइयत से व्यक्तिगत शुद्धि के उदाहरण मिलते हैं। पहले कालखंड के प्रारंभ में अमृतसर के आर्यसमाज ने ऐसी शुद्धि-विधि को स्थापित किया जिससे कि रूढ़िवादी भी संतुष्ट हो। इस शुद्धि-विधि को रूढ़िवादी पंडित तुलसीराम ने मान्यता दी। पंडितजी का पत्र लेकर शुद्धिकृत लोग हरिद्वार जाते थे और गंगा में डुबकी लगाकर शुद्धि-विधि को पूर्ण करते थे। इस प्रकार से अमृतसर व्यक्तिगत शुद्धि का केंद्र बना। सन् 1893 में यह विधि पूर्ण वैदिक की गई, जिसमें मुंडन, हवन, गायत्री मन्त्र का निरूपण, यज्ञोपवीत, आर्यसमाज के नियमों का विवरण, शरबत बाँटना ये बातें शामिल थीं।[5]

पहले कालखंड में आर्य समाज और सिक्ख समाज शुद्धि के लिए समन्वित रूप से काम करते दिखाई देते हैं। सिक्खों की शुद्धि के लिए लाहौर में सिंघ सभा से अलग 'जाट सिंघ सभा' की स्थापना हुई। डॉ. जय सिंह (1856-1898) नामक औषधि-विक्रेता की अगुआई में 17 अप्रैल 1893 को लाहौर में 'शुद्धि सभा' की स्थापना हुई, जिसमें सिंघ सभा, जाट सिंघ सभा, आर्यसमाज, सनातन धर्म सभा और पंडित सभा के प्रतिनिधि थे। [6] अगस्त 1893 तक इसके 70 सदस्य हुए थे। अप्रैल-मई 1896 को डॉ. जय सिंह ने 'शुद्धि पत्र खालसा धरम प्रकाशक' नामक पंजाबी पत्रिका शुरू की। शुद्धि सभा के तत्त्वावधान में कई सिक्खों की शुद्धि की गई। लेकिन डॉ. सिंह की मृत्यु (9 जून 1898) के बाद इसकी गतिविधियाँ समाप्त हो गई।

सन् 1896 में पंजाब में हुए अकाल में ईसाई मिशनरियों ने कथित रूप से 'अछूत' हिन्दुओं को लक्ष्य बनाया। आर्यसमाज ने ऐसे अनेक हिन्दुओं को ईसाई होने से बचाया, इतना ही नहीं, ऐसे अनेक 'अछूत' हिन्दुओं को सामूहिक रूप से यज्ञोपवीत देकर और गायत्री मन्त्र पढ़ाकर उनके लिए सार्वजनिक कुँए उपलब्ध करा दिए। इस

आंदोलन का ज्वार शुद्धिकार्य को अगले स्तर पर ले गया। पंजाब के बाहर लाड़काना, सिंध के शेख, लुधियाना के सुबराई लबाना और अजमेर के मैवाड़ी जैसे आधे-मुस्लिम, आधे-हिन्दू जातियों को शुद्ध किया गया। इसमें चौधरी रामभज दत्त की विशेष भूमिका रही। दि. 31 जनवरी 1904 को देवबंद के दार-उल उलूम के शिक्षक मौलवी इद्रत हुसैन को शुद्ध किया गया। डीग, भरतपुर रियासत (पूर्वी राजस्थान) में नव मुस्लिमों की शुद्धि का प्रयत्न 1908 में किया गया। पश्चिमी संयुक्त प्रान्त के एटावा, कानपुर, मेरठ और मैनपुरी जिलों में इसी प्रकार प्रयत्न किए गए। [7]

मोपला जिहाद

सन् 1920 में महात्मा गांधी का भारत की राजनीति में उदय हुआ। एक वर्ष में स्वराज दूंगा यह घोषणा उन्होंने की। एक वर्ष की समाप्ति पर उत्तर केरल के मल्लपुरम् में बसे मोपला मुस्लिमों ने स्वयं को ब्रिटिशों से मुक्त घोषित किया। ब्रिटिशों द्वारा तुर्कस्तान के खलीफा को हटाए जाने से वे क्षोभित थे। मोपलाओं की संख्या लगभग दस लाख थी। ब्रिटिशों के विरुद्ध उन्होंने पहले भी लगभग पैंतीस बार छोटे-छोटे विद्रोह किए थे। अगस्त 1921 में उन्होंने ब्रिटिशों को लक्ष्य बनाया ही, लेकिन इस बार उन्होंने वहाँ रहने वाले बीस लाख हिन्दुओं के विरुद्ध जिहाद पुकारा। सामूहिक हत्या, बलात्कार, मंदिरों का विध्वंस, लूट-पाट आदि नृशंसता की सारी सीमाएँ पार की गई। मोपला जिहाद में 20800 हिन्दुओं की हत्या की गई, 4000 से अधिक लोग मृत्यु के भय से मुस्लिम होने को तैयार हुए। ब्रिटिशों की सेना की गोलीबारी में 2339 मोपला मारे गए और 1652 जख्मी हुए। कुल 39338 मोपला विद्रोहियों पर अभियोग चलाया गया और 24167 विद्रोहियों को दण्डित किया गया। लगभग 2500 हिन्दुओं का मतान्तरण किया गया और लाखों हिन्दू बेघर हुए।[8] इन आँकड़ों से इस जिहाद की व्यापकता एवं भीषणता की कल्पना की जा सकती है।

मलबार की घटनाओं से पूरे देश में आक्रोश की लहर उठी। दि. 16 अक्टूबर 1921 को लाला हंसराज (19 अप्रैल 1864 - 14 नवंबर 1938) की अध्यक्षता में पंजाब आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की बैठक हुई जिसमें पीड़ित हिन्दुओं की सहायता करने तथा मतान्तरितों को शुद्ध करने का संकल्प किया गया। इस योजनानुसार दि. 1 नवंबर 1921 को लाला हंसराज ने पं. ऋषिराम को मलबार जाने का निर्देश दिया। उनके बाद लाला खुशहालचन्द भी वहाँ गए। पूरे देश में साहित्य-प्रचार और निधि-संकलन किया गया। मतान्तरितों के शुद्धिकरण के सम्बन्ध में केरल के रूढ़िवादी

लोग अनुकूल नहीं थे लेकिन आर्य समाज के इन कार्यकर्ताओं से इस सोच में परिवर्तन आया। इसके फलस्वरूप, कोळिकोल (कालिकट) के झामोरिन (राजा) ने अगस्त 1922 में इस विषय के लिए नम्बूदरी पंडितों की सभा बुलाई। मतान्तरितों की शुद्धि पर सहमति व्यक्त करते हुए इस सभा ने चार प्रस्ताव पारित किए जिनमें कलमा पढ़ना, चोटी कटवा देना, मोपलाओं के साथ रहना, भ्रष्टाचार आदि पापों के लिए भिन्न प्रायश्चित बताए गए। लगभग सभी 2500 मतान्तरितों को शुद्ध किया गया। शुद्धि कार्य में आर्यसमाज का नाम देशभर में विख्यात हुआ। [९]

नौ-मुस्लिमों की शुद्धि का प्रश्न

मलबार की यशस्वी शुद्धि के बाद देश के अन्य भागों में भी यह भावना प्रबल हो उठी कि पूर्वकाल में जिनका बलात् मतान्तरण हुआ था, ऐसे सभी बंधुओं को पुनः हिन्दू समाज में लिया जाय। ऐसी अनेक हिन्दू जातियाँ थीं जो गतकाल में मतान्तरित की गई थीं। ये नौ-मुस्लिम आचार-विचार तथा व्यवहार में हिन्दुओं से अधिक भिन्न नहीं थे। वे विवाह संस्कार में ब्राह्मण को बुलाते थे और अन्त्यविधि में दाह संस्कार करते थे। वे गौमांस को अभक्ष्य मानते थे। मलकाना राजपूत (संयुक्त प्रांत), मेव (मध्य राजस्थान), शेख (लाड़काना, सिंध), मोरेसलाम (मध्य गुजरात), मातिया पीराना पंथी पाटीदार (दक्षिण गुजरात) इत्यादि इनके उदाहरण थे। ये जातियाँ स्वयं पुनः हिन्दू समाज में वापिस आना चाहती थीं। लेकिन हिन्दू समाज के रूढ़िवादी तत्त्व इन्हें अपनाने से कतराते थे। शुद्धि के समर्थन में हिन्दू समाज का मन बनाना यह चुनौती थी। इस दृष्टि से जातिगत संगठनों का बड़ा योगदान रहा।

दि. 30 अगस्त 1922 को क्षत्रिय उपकारिणी सभा का एक अधिवेशन हुआ, जिसके अध्यक्ष सर महाराजा रामपाल सिंह जी थे। उसमें प्रस्ताव स्वीकार किया गया, 'शाही जमाने में जो राजपूत भाई हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति से अलग हो गए या अलग कर दिए गए थे और अब पुनः अपने धर्म तथा हिन्दू बिरादरी में आना चाहते हैं, उन्हें पुनः शुद्ध करके राजपूत बिरादरी में शामिल कर लिया जाय।' अगस्त और दिसंबर 1922 के बीच क्षत्रिय उपकारिणी सभा की तीन बैठकें हुई। तीसरी बैठक में निश्चय हुआ कि शुद्धि-विधि के बाद मलकाने, हिन्दू राजपूतों से एक हो सकते हैं। उसी वर्ष 31 दिसंबर को शाहपुराधीश महाराजा श्री नाहर सिंह जी के सभापतित्व में क्षत्रिय महासभा का अधिवेशन हुआ, जिसमें इस प्रस्ताव को सम्पुष्ट किया गया। इस प्रस्ताव की आवश्यकता विशेष रूप से तब पड़ी जब कि लगभग 13 वर्ष पहले 1909 में

आगरे के पं. भोजदत्त जी द्वारा स्थापित राजपूत शुद्धि सभा ने कई सौ नव-मुस्लिम राजपूतों को हिन्दू धर्म में वापिस ले लिया था। वे भी राजपूत जाति की उपेक्षा के कारण ही घबराकर फिर इस्लाम में मतान्तरण के लिए तैयार हो रहे थे। क्षत्रिय उपकारिणी सभा प्रस्ताव का मुख्य रूप से यह उद्देश्य था कि उन डांवाडोल होते हुए भाइयों को सहारा दिया जाय।[10]

दि. 30, 31 मई 1923 को राजपूतों का एक विराट सम्मेलन वृन्दावन में हुआ, जिसमें राजपूतों की हर उप-जाति शामिल हुई। इस सम्मेलन के आयोजन में लाला हंसराज की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। उसके पूर्व 26 मई को कुछ सौ राजपूतों की सभा हुई, जिसमें तय किया गया कि मलकानों को शुद्ध करके उनसे 'हुक्के' का सम्बन्ध जोड़ लिया जाय। संयुक्त प्रान्त के चार सौ अठारह देहातों में लगभग पाँच लाख मलकाना राजपूत बसे थे। संयुक्त प्रान्त में मथुरा से लेकर फर्रुखाबाद तक फैले मलकाना राजपूतों के पूर्वज डेढ़ या दो सदी पूर्व मुस्लिम बने थे। लेकिन वे स्वयं को चौहान, गहलोत, राठौड़ आदि राजपूतों के विभिन्न वर्गों के वंशज मानते थे। खुले सम्मेलन में निश्चय हुआ कि मलकानों को शुद्ध कर लिया जाय और अगले ही दिन एक सहभोज हो, जिस में शुद्ध मलकाने भी सम्मिलित हो। इसी तरह मैनपुरी में भी सम्मेलन हुआ। इस तरह अप्रैल, मई, जून की चिलचिलाती धूप और कड़कती गर्मी में लाला हंसराज भूख-प्यास की चिंता न करते हुए 147 गाँव शुद्ध करने में सफल हुए।[11]

स्वामी श्रद्धानन्द

शुद्धि आंदोलन के इतिहास में स्वामी श्रद्धानन्द (मूल नाम मुन्शीराम, 2 फरवरी 1856 - 23 दिसंबर 1926) का नाम अमर है। सन् 1922 में हुई क्षत्रिय उपकारिणी सभा की बैठकों का उल्लेख पहले आ चुका है। अगली बैठक 13 फरवरी 1923 को आगरा में हुई। इसमें स्वामी श्रद्धानन्द को बुलाया गया था। बैठक में आर्य, सनातनी हिन्दू, सिक्ख और जैन भी थे। इसी बैठक के बाद स्वामी जी की अध्यक्षता में 'भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा' का गठन हुआ, जिसका वर्णन आगे दिया है। आगरा की इस बैठक के दस दिन बाद स्वामी जी का प्रसिद्ध पत्रक 'सेव द डाइंग रेस' (मरणोन्मुख वंश को बचाओ) प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने व्यथित अंत:करण से नव-मुस्लिमों को शीघ्रातिशीघ्र अपने पुराने कुटुम्ब में सम्मिलित करने की आवश्यकता पर बल दिया। स्वामी जी स्वयं उस कार्य में तुरंत जुट गए।

दि. 25 फरवरी 1923 को आगरा के निकट ग्राम रेभा में हुए मलकाना राजपूतों

के पहले शुद्धि समारोह में वे उपस्थित रहे। अगले दो महिनों में उन्होंने लगभग सौ गाँवों का प्रवास किया। पहले महीने में ही 5000 मलकानों को वापिस लाया गया। सन् 1923 के अंत तक यह संख्या 30000 तक पहुँची थी। जमीयत उलेमा और कांग्रेस के कई मुस्लिम-परस्त नेताओं ने स्वामी जी के कार्य पर आक्षेप जताया, लेकिन स्वामी जी अडिग रहे। शुद्धि अभियान शुरू होने के एक महीने बाद 31 मार्च 1923 को दरभंगा के राजा और भारत धर्म महामण्डल की ओर से काशी के पंडितों ने उसे अपना समर्थन घोषित किया। पंजाब के रूढ़िवादी पंडितों ने भी इस अभियान का समर्थन किया। महाराष्ट्र धर्म परिषद्, साधु महासभा, गुज्जर महासभा, जाट महासभा एवं राजपूत भ्रातृ सम्मेलन ने भी शुद्धि अभियान का समर्थन किया। दि. 4 और 5 अप्रैल 1923 को बनारस में हुई विशाल सार्वजनिक सभाओं में यह विषय रखा गया। परिणाम यह हुआ कि काशी के छह रूढ़िवादी पंडितों ने मलकानों में काम करने का निर्णय लिया। मई 1923 में मलकानों की शुद्धि के हेतु रूढ़िवादी पंडितों ने 'हिन्दू पुनः संस्कार समिति' नामक संगठन (केंद्र आगरा) शुरू किया जिसके अध्यक्ष हुए भारत धर्म महामण्डल के स्वामी दयानन्द।[12] संक्षेप में, मलकाना राजपूतों की शुद्धि का विषय समूचे हिन्दू समाज ने अपना लिया।

सन् 1924 में स्वामी जी दनकौर, बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश) पधारे। उन्होंने वहाँ कई मुस्लिमों को शुद्ध किया। मेरठ, मुजफ्फरनगर और बुलंदशहर के लगभग 150 ईसाइयों को भी उन्होंने शुद्ध किया। उनके सहयोगी पं. रामभज दत्त इसी कार्य के लिए देहरादून गए। मेरठ के मलियाना और भीकनपुर में उनके सहयोगी मंगल सेन गए।[13]

मार्च 1926 में दिल्ली में एक मुस्लिम महिला असगरी बेगम की शुद्धि हुई और उसे शान्ति देवी यह नाम दिया गया। असगरी कराची से अपने घर के लोगों से छिपकर अपने बच्चों को लेकर आई और उसने स्वामी जी के सम्मुख हिन्दू धर्म स्वीकारने की इच्छा प्रकट की। शुद्धि संपन्न हो जाने पर शान्ति देवी को उसके बच्चों सहित दिल्ली के आर्य विधवाश्रम में रखा गया। कुछ समय पश्चात् उसका पिता, मौलवी ताज मुहम्मद और पति अब्दुल हकीम भी दिल्ली आ गए। उन्होंने शान्ति देवी से मिलकर उसे पुनः इस्लाम कुबूल करने के लिए मनाया, लेकिन उसने ऐसा करने से साफ इंकार किया। इस पर इन लोगों ने स्वामी जी, उनके पुत्र प्रो. इन्द्र और दामाद डॉ. सुखदेव पर शान्ति देवी और उसके बच्चों को भगाने का आरोप लगाते हुए अभियोग किया। न्यायालय ने अभियुक्तों को निर्दोष घोषित किया। लेकिन मुस्लिमों द्वारा स्वामी जी को इस्लाम का

शत्रु घोषित किया गया। उनकी सुरक्षा के सम्बन्ध में उनके समर्थक चिंतित थे लेकिन स्वामी जी का मुस्लिम मुहल्लों की ओर सायंकालीन भ्रमण यथापूर्वक चलता रहा। दि. 23 दिसंबर 1926 के दिन अब्दुल रशीद नामक मुस्लिम उनसे इस्लाम के सम्बन्ध में बहस करने के बहाने आया। उसने स्वामी जी पर पिस्तौल से गोलियाँ चलाईं। शुद्धि-कार्य के लिए स्वामी जी ने अपने प्राणों की आहुति दी। [14]

भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा

दि. 13 फरवरी 1923 को भिन्न-भिन्न प्रान्तों के 85 प्रतिनिधि आगरा में एकत्र हुए। नव-मुस्लिमों की अधिकतर जनसंख्या आगरे के आस-पास थी इसलिए बैठक आगरा में हुई। सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि शुद्धि के कार्य के लिए एक केन्द्रीय सभा स्थापित की जाय। सभा का नाम 'भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा' रखा गया। उसके निम्नलिखित उद्देश्य स्वीकृत हुए -

क. हिन्दू समाज से बिछुड़े हुए तथा अन्य मतावलम्बी भाइयों को पुनः हिन्दू समाज में सम्मिलित करना।

ख. शुद्धि-क्षेत्र में प्रेम तथा धर्म का प्रचार करना।

ग. पाठशालाओं तथा शिक्षाप्रद संस्थाओं द्वारा शुद्धिक्षेत्र में शिक्षा आदि का प्रचार करना।

घ. अनाथों तथा विधवाओं के धर्म की रक्षा करना।

ङ. आवश्यकता होने पर शुद्धि क्षेत्र में चिकित्सालय खोलना।

च. धार्मिक, ऐतिहासिक तथा अन्य पुस्तकों को, जो सभा के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हों, छपवाना।

छ. सभा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अन्य आवश्यक साधनों को काम में लाना।

स्वामी श्रद्धानन्द इसके प्रधान एवं लाला हंसराज, बाबूराम प्रसाद और कुंवर हनुमन्तसिंह उपप्रधान बने। शुद्धि सभा का पंजीयन 4 दिसंबर 1924 को हुआ। सभा का मुख्य कार्यालय 1925 की मार्च तक आगरा में रहा। उसके पश्चात् एक वर्ष तक लखनऊ में रह कर दिल्ली में चला गया। भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा के अधिकारियों तथा अन्तरंग सदस्यों के नामों की पूरी सूची को पढ़ने से प्रतीत होता है कि इसके प्रारंभिक कार्यकर्ताओं में दो-तीन को छोड़ कर शेष सभी कार्यकर्ता आर्यसमाज से सम्बद्ध थे। भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा के माध्यम से अनेक कट्टर सनातनधर्मी पंडित और कार्यकर्ता जी-जान से आर्यसमाज को सहायता देने लगे। लगभग सारे हिन्दू समाज ने उसका हृदय से स्वागत किया। उसका एक प्रमाण सनातन धर्म के प्रसिद्ध पंडितों द्वारा दी

गई वह व्यवस्था थी, जो महामहोपाध्याय पंडित शिवदत्त शास्त्री की ओर से प्रकाशित की गई थी। व्यवस्था का अभिप्राय यह था कि जब किसी अनार्य धर्म में गए हुए मनुष्य के मन में आर्य बनने की अभिलाषा उत्पन्न हो, तब पहले उसके मन में अपने धर्म का त्याग हो जाने पर पश्चाताप होना चाहिए, फिर म्लेच्छत्व का अभिमान त्याग देना चाहिए और उसके पश्चात् अनार्य धर्म को छोड़ कर आर्य धर्म में प्रवेश करने के लिए श्रुति, स्मृति, पुराण वाक्यों में विश्वास रखकर प्रायश्चित के निमित्त आर्य विद्वानों के समीप आना चाहिए और फिर उनके उपदेश को मानकर पश्चाताप, उपवास, गंगास्नान आदि कर्म तथा शास्त्र की बतलाई हुई रीति के अनुसार राम, कृष्ण तथा शिव के मन्त्रों द्वारा दीक्षा प्राप्त करनी चाहिए। इस प्रकार अनार्यत्व दूर हो जाता है और आर्यत्व प्राप्त हो जाता है।

अनुमान लगाया गया है कि केवल शुद्धि सभा द्वारा 1923 और 1931 के मध्यवर्ती आठ वर्षों में लगभग 183342 नव-मुस्लिमों को शुद्ध किया गया। इन्हीं वर्षों में 60000 के लगभग अस्पृश्य कहलाने वाले लोगों को विधर्मी होने से बचाया गया, 127 शुद्धि सम्मेलन किये गए, 156 पंचायतें हुई और 81 बड़े-बड़े सहभोज किये गए। शुद्धि सभा की ओर से 'शुद्धि समाचार' नाम से एक मासिक पत्र निकलता था, जिसके एक समय में 14 हजार ग्राहक थे। शुद्धि सम्बन्धी साहित्य पर शुद्धि सभा ने 48 हजार रुपया व्यय किया।[15]

अखिल भारत हिन्दू महासभा

यद्यपि पंजाब हिन्दू सभा की स्थापना 1909 (लाहौर) और अखिल भारत हिन्दू महासभा की स्थापना 1915 (हरिद्वार) में हुई, उसकी विषय पत्रिका पर 'शुद्धि' यह विषय मोपला जिहाद के बाद आया ऐसा मालूम होता है। दि. 30 दिसंबर 1922 को गया (बिहार) में कांग्रेस के पण्डाल में आयोजित अ.भा. हिन्दू महासभा के वार्षिक अधिवेशन (अध्यक्ष पं. मदन मोहन मालवीय; स्वागताध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद) में पारित प्रस्ताव क्र. 7 में मलबार के हिन्दुओं के प्रति सहसंवेदना व्यक्त की गई तथा उस प्रान्त के धार्मिक नेताओं को बिना किसी हिचकिचाहट से मतान्तरितों को पुनः स्वीकार करने का आह्वान किया गया।

सन् 1923 में महाराष्ट्र हिन्दू सभा की स्थापना हुई। शुद्धि ही उसका प्रमुख कार्यक्रम था। उसकी प्रेरणा से गठित पतितपावन सभा ने 1923 में 75 लोगों का शुद्धिकरण किया। मांग-गारुड़ी (सपेरा) समाज के कुछ लोगों को छलपूर्वक मुस्लिम

बनाया गया था। शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि की आज्ञानुसार उन्हें हिन्दू बनाया गया। वैद्य नामक एक ब्राह्मण सज्जन को, जो ईसाई बने थे, हिन्दू बनाया गया।[16]

अ.भा. हिन्दू महासभा का सातवाँ अधिवेशन 19 और 20 अगस्त 1923 को बनारस में महामना मालवीय की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। अपने अध्यक्षीय भाषण में महामना मालवीय ने शुद्धि कार्य का जोरदार समर्थन किया। उन्होंने शुद्धि के समर्थन में 'धर्मशास्त्र महाप्रबन्ध' के श्लोक का उल्लेख किया। 'विषय समिति' का काम अधिवेशन के निर्धारित दो दिनों में पूरा न हो सका। तत्कालीन हिन्दू समाज के सामने, जो मलकाना राजपूतों की शुद्धि का विषय सबसे महत्त्व का था, उसकी चर्चा दि. 20 अगस्त की रात 8 बजे शुरू हुई। मलकाना राजपूतों की शुद्धि के सम्बन्ध में समिति के रूढ़िवादी पंडित सदस्यों का मन जैसे-तैसे बना। लेकिन वहाँ उपस्थित स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति उनका रुख प्रतिरोधी मालूम हो रहा था। पंडितों द्वारा की गई निंदाजनक आलोचना के बावजूद स्वामी जी ने बड़ी शान्ति और संयम का परिचय दिया। लगभग साढ़े छह घंटे की चर्चा के बाद शुद्धि सम्बन्धी प्रस्ताव का प्रारूप प्रातः 2.30 बजे तैयार हो सका। अगले दिन 21 अगस्त को भी विषय समिति में इस प्रस्ताव पर लम्बी चर्चा चली। अंत में प्रस्ताव सर्वसहमति से पारित हुआ। मलकानों की शुद्धि और अहिन्दुओं के हिन्दू धर्म में प्रवेश के सम्बन्ध में दो अलग-अलग प्रस्ताव पारित हुए। पहले प्रस्ताव को लाहौर के सनातन धर्म ओरिएंटल कॉलेज के प्राचार्य पं. गिरिधारी शर्मा शास्त्री ने प्रस्तुत किया। दूसरे प्रस्ताव को जामनगर, काठियावाड़ के महामहोपाध्याय पं. हाथीभाई शास्त्री ने प्रस्तुत किया और बंगाल, दिल्ली और पंजाब के विद्वान पंडितों ने उसे अनुमोदित किया। बाबू भगवान दास (काशी विद्यापीठ के संस्थापक, थियोसोफिस्ट, सन् 1955 में भारत रत्न) ने शुद्धि के समर्थन में अति विद्वत्तापूर्ण भाषण दिया।[17]

दि. 11 अप्रैल 1925 के दिन कोलकाता में अ.भा. हिन्दू महासभा का आठवाँ अधिवेशन लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। अपने अध्यक्षीय भाषण में हिन्दू महासभा के करणीय कार्यक्रमों में लालाजी ने इस्लाम में बलात् मतान्तरित हिन्दुओं की शुद्धि का समावेश किया। दि. 11 अप्रैल 1925 में लिखे नौ उद्देश्यों में से इस्लाम में बलपूर्वक मतान्तरित हुए हिन्दुओं को परावर्तित करना, यह एक उद्देश्य था।[18]

अ.भा. हिन्दू महासभा के अध्यक्ष पद से कई महापुरुषों ने शुद्धि का समर्थन किया, जैसे नरसिंह चिंतामन केलकर (कानपुर, 29 दिसंबर 1925), राजा नरेंद्रनाथ (दिल्ली, 13 मार्च 1926), महामना मालवीय (गुवाहाटी, 28 दिसंबर 1926),

डॉ. बालकृष्ण शिवराम मुंजे (पटना, 16 अप्रैल, 1927), रामानन्द चटर्जी (सूरत, 30 मार्च, 1929), शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि (लाहौर, 21 अक्टूबर 1936)। रत्नागिरी हिन्दू सभा एवं अ.भा. हिन्दू महासभा के माध्यम से तथा अन्य प्रकार से स्वातंत्र्यवीर सावरकर ने शुद्धि का समर्थन और प्रत्यक्ष शुद्धि का कार्य किया। उसका सविस्तार विवरण आगे दिया गया है।

हिन्दू मिशनरी सोसायटी

महाराष्ट्र में संस्थागत स्तर पर शुद्धि कार्य शुरू करने का श्रेय थिऑसोफिकल सोसायटी के सदस्य और मुंबई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय के संस्थापक-सदस्य गजानन भास्कर वैद्य को जाता है। लोकमान्य तिलक के 'केसरी' समाचार-पत्र के लिए वैद्यजी मुंबई से समाचार भेजते थे। इसलिए उनका तिलक जी से परिचय था। सन् 1917 में वैद्यजी ने मुंबई में पहला शुद्धिकरण किया। संयोगवश उस दिन तिलक जी मुंबई में थे। वैद्यजी ने उनसे मिलकर इस शुद्धिकरण का समाचार बताया। तिलक जी ने उनका अभिनन्दन किया और 'क्या कोई शुद्धि विधि किया' यह पूछा। वैद्यजी के 'हाँ' कहने पर तिलक जी ने कहा कि कोई विधि अवश्य होना चाहिये।[19]

सन् 1918 में गुरुपूर्णिमा के दिन वैद्यजी ने मुंबई के हीराबाग में सार्वजानिक सभा में 'हिंदू मिशनरी सोसायटी' के स्थापना की घोषणा की। सन् 1918-1924 इस अवधि में उन्होंने सोसायटी के माध्यम से 121 लोगों को शुद्ध किया। इस कार्य में प्रबोधनकार केशव सीताराम ठाकरे, एल.बी. तथा बालासाहब राजे, अनंत राव पिटकर ('केसरी' के पत्रकार), सावलाराम दौंडकर, बेंद्रे आदि ने सहयोग किया।[20] तीन बार 'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्' इस मंत्र का उच्चारण कर पानी में डुबकी लगाना, गायत्री मंत्र का उच्चारण और जनेऊ धारण करना यह शुद्धि विधि प्रबोधनकार ठाकरे ने अपनाया था।[21]

मसुराश्रम

सन् 1510 में गोवा पर पुर्तगाली शासन शुरू हुआ। उसके बाद गोवा के हिन्दुओं पर अनेक सदियों तक अत्याचारों का दौर शुरू हुआ। हजारों हिन्दुओं को बलात् ईसाई बनाया गया। दि. 5 अक्टूबर 1910 के दिन गोवा पर राज-तंत्र के स्थान पर पुर्तगाली गणतंत्र पद्धति शुरू हुई। हिन्दुओं को अपनी धार्मिक रीतियों का पालन करने की थोड़ी छूट मिल गई। लेकिन उसके बावजूद ईसाइयत छोड़कर बाकी उपासना-मत झूठ हैं यही गणतंत्र के राज्यपाल का मत था। इसलिए परिस्थिति में बदलाव आने के बाद भी वहाँ

के मतान्तरित हिन्दुओं को पुनः हिन्दू समाज में प्रवेश दिलाने का कार्य असम्भव मालूम होता था। गोवा के स्थानीय हिन्दू नेताओं की इस शुद्धिकरण के सम्बन्ध में तीव्र इच्छा थी। रामचंद्र नारायण लवांदे, डॉ. त्रिविक्रम येलेकर, विष्णु कामत आजरेकर आदि लोग ईसाई बने गावड़ा हिन्दुओं के निरंतर संपर्क में थे। उनके आचार-विचारों का अध्ययन किया। ये लोग खेती करने वाले थे। मूलकेश्वर यह उनका मूल पुरुष था। इन्हें लगभग चार सौ वर्षों पहले ईसाई बनाया गया था। जन्म, विवाह और मृत्यु के समय ये लोग पादरियों के पास जाते थे। लेकिन अब भी उन्होंने अपने हिन्दू आचार-विचार छोड़े नहीं थे। विशिष्ट दिन पर ये मूलकेश्वर के नाम पर सहभोज में शामिल होते थे। इन लोगों का मन बनाने के लिए शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि ने लवांदे जी को बताया।

समर्थ रामदास की बलोपासना एवं धर्मरक्षा की परंपरा को आगे ले जाने के लिए श्रीमन् विनायक महाराज मसुरकर (मूल नाम, विनायक शिवराम जोशी, 20 जनवरी 1889- 6 अप्रैल 1955, हनुमान जयंती) नामक संन्यासी ने मसुर (जिला सातारा, महाराष्ट्र) में ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना की थी। रत्नागिरी में स्वातंत्र्यवीर सावरकर से मसुरकर महाराज मिलने गए। तब वीरजी ने उनको उपदेश किया, 'रामदासी पंथ का केवल प्रसार न करते हुए श्रीराम के जो लाखों भक्त परधर्म में चले गए हैं, उन्हें स्वधर्म में ले आइए।' मतान्तरित गावड़ों की शुद्धि की योजना मसुरकर महाराज ने बड़ी सावधानी से तैयार की। उन्होंने उनसे संपर्क और स्नेह बढ़ाया। आश्रमीय लोग टोलियों में बस्तियों में जाते, संतों की रचना ऊंची आवाज में कहते, सूर्य-नमस्कार और हठयोग का प्रयोग करते और कौतूहल से दृश्य को देखने आए गावड़ों को हनुमानजी का चित्र और साहित्य वितरण करते। पूरा दिन यह क्रम चलता। शाम को निर्धारित समय पर मसुरकर महाराज किसी खाली पड़े देवस्थान पर आते और गाँव वालों से संवाद स्थापित करते। हिन्दू नाम, आचार, पूजा पद्धति अपनाने की प्रेरणा देते। धीरे-धीरे गावड़ों की जाति-पंचायत में महाराज के स्नेहसूत्र में बँधा एकादा गावड़ा शुद्धि का विषय धीरे से उठाता। जैसे-जैसे गावड़ों का मन अनुकूल बना, महाराज ने अपनी योजना विधिज्ञों और चयनित नेताओं को बताई।[22]

शुद्धि की योजना को अंतिम रूप देकर मसुरकर महाराज पुर्तगाली शासित प्रदेश छोड़कर ब्रिटिश शासित प्रदेश में चले आए। शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि ने आशीर्वादपूर्वक आज्ञापत्र जारी किया। तिसवाड़ी तहसील स्थित 'कालापुर' गाँव को प्रत्यक्ष शुद्धि का केंद्र निश्चित किया गया। इसी तिसवाड़ी तहसील में 400 वर्ष पहले पुर्तगालियों ने

मतान्तरण का कार्य शुरू किया था। दि. 26 फरवरी 1928 को तिसवाड़ी तहसील के चिम्बल गाँव में 800 और नागझर गाँव में 350 गावड़ों की शुद्धि की गई। अगले चार दिनों में अलग-अलग गाँवों में 1525 गावड़ों की शुद्धि हुई। अकेले तिसवाड़ी तहसील में 4851 गावड़ों ने हिन्दू धर्म में प्रवेश किया। कुल मिलाकर 7815 गावड़ों की शुद्धि हुई। [23] हिन्दू होने के बाद कई वर्षों तक शुद्धिकृत गावड़ों के हिन्दू नामों का पंजीयन नहीं हुआ था। इसलिए मतदाता सूची में उनके ईसाई नाम ही पंजीकृत थे। यह काम सन् 1969 से 1970 तक पुणे हिन्दू सभा की ओर से शंकर रामचंद्र दाते और उनके साथियों ने किया। उनके प्रयत्नों से 3422 शुद्धिकृत गावड़ों के हिन्दू नाम सरकारी कागज-पत्रों में पंजीकृत हुए।[24]

मसुरकर महाराज के साथ ब्रह्मचारी वासुदेव स्वामी, ब्र. आनंदमूर्ति, ब्र. शिवराम स्वामी, ब्र. दत्तमूर्ति ने मसुराश्रम के माध्यम से शुद्धि कार्य किया। सन् 1928 से 1938 के बीच मसुराश्रम ने कुल 20206 लोगों की शुद्धि की तथा लगभग 39529 हिन्दुओं को मतान्तरित होने से बचाया।

मतान्तरितों की शुद्धि के प्रयास संगठन-स्तर के साथ-साथ व्यक्तिगत स्तर पर भी शुरू हुए। इसका विवरण अगले अध्याय में दिया गया है।

सन्दर्भ -

1) जॉर्डेन्स, दयानन्द सरस्वती : हिज़ लाइफ एण्ड आयडियाज़, पृ. 169
2) सक्सेना, पृ. 123
3) जॉर्डेन्स, दयानन्द सरस्वती : हिज़ लाइफ एण्ड आयडियाज़, पृ. 169
4) मुंशीराम
5) जॉर्डेन्स, दयानन्द सरस्वती : एसेज़ ऑन हिज़ लाइफ एण्ड आयडियाज़, पृ. 166-167
6) घई, पृ. 51
7) जॉर्डेन्स, दयानन्द सरस्वती : एसेज़ ऑन हिज़ लाइफ एण्ड आयडियाज़, पृ. 169
8) दाते, महाराष्ट्र हिंदुसभेच्या कार्याचा इतिहास, पृ. 21, 22
9) थर्स्बी, पृ. 35-40
10) इंद्र विद्यावाचस्पति, पृ. 117
11) महात्मा खुशहालचन्द आनंद, पृ. 98, 100

12) जॉर्डेन्स, स्वामी श्रद्धानन्द : हिज़ लाइफ एण्ड कॉजेज़, पृ. 131-134

13) सक्सेना, पृ.124

14) भारतीय, पृ. 124-125

15) इंद्र विद्यावाचस्पति, ,पृ. 118-121

16) दाते, महाराष्ट्र हिंदुसभेच्या कार्याचा इतिहास पृ. 23

17) रल्हन, पृ. 70-73

18) रल्हन, पृ. 22

19) बापट, पृ. 349

20) कांबले, पृ. 93

21) कांबले, पृ. 52

22) क्षीरसागर, प्रकरण 3, पृ. 2-29

23) क्षीरसागर, प्रकरण 4, पृ. 1-9

24) दाते, श्री शंकर रामचंद्र दाते यांच्या जीवनातील आठवणी, पृ. 156-157

शुद्धिकरण के कुछ व्यक्तिगत प्रयास

अनेक महापुरुषों ने वाणी, लेखनी एवं प्रत्यक्ष कृति द्वारा शुद्धिकरण के प्रयास किए। कुछ उल्लेखनीय प्रयास निम्न प्रकार से हैं।

आचार्य बाल गंगाधर शास्त्री जाम्भेकर

उन्नीसवीं सदी में शुद्धि के प्रवर्तक के रूप में आद्य मराठी पत्रकार, संपादक, भाषाशास्त्री, शिक्षाविद आचार्य बाल गंगाधर शास्त्री जाम्भेकर (1812-1846) का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। सन् 1843 में घटित 'श्रीपत शेषाद्रि शुद्धि' प्रकरण की चर्चा समाचार-पत्रों में व्यापक रूप से हुई। यह विषय सर्वोच्च न्यायालय तक गया।

महाराष्ट्र के निज़ाम-शासित प्रदेश के परली गाँव (वर्तमान जिला बीड, महाराष्ट्र) का शेषाद्रि गोविन्द नामक गरीब ब्राह्मण अपने दो बेटों की शिक्षा के लिए मुंबई आया था। चर्च ऑफ़ स्कॉटलेण्ड की जनरल असेम्बली के मुंबई स्थित स्कूल में शेषाद्रि गोविन्द का बड़ा लड़का नारायण सन् 1838 से और छोटा लड़का श्रीपत सन् 1841 से पढ़ने लगे। सन् 1842 में उसी स्कूल में नारायण को शिक्षक नियुक्त किया गया। उस स्कूल के चालक रे. रॉबर्ट नेस्बिट और रे. मरेमिचेल के कारण नारायण की हिन्दुत्वनिष्ठा क्षीण होती गई। परिणामस्वरूप रे.नेस्बिट ने 13 सितंबर 1843 को उसे बपतिस्मा दिया। ध्यातव्य है कि इस बपतिस्मा के दूसरे दिन ही मुंबई के समस्त ब्राह्मणों ने मिशनरी स्कूलों का बहिष्कार घोषित किया।[1]

दि. 7 सितंबर को ईसाई बनने के उद्देश्य से जब नारायण अपना घर छोड़कर रे.नेस्बिट के घर चला गया, उस समय उसके प्रभाव में आकर छोटे लड़के श्रीपत ने भी उसका साथ दिया। नारायण वयस्क था एवं उसने स्वेच्छा से ईसाई बनने का निर्णय लिया था। उसे पुनः हिन्दू बनाना असम्भव प्रतीत हो रहा था। लेकिन ग्यारह वर्ष का छोटा लड़का श्रीपत अल्पवयस्क होने के कारण कम से कम उसे पुनः अपने घर लाने की पिता शेषाद्रि गोविन्द की इच्छा थी। श्रीपत को पादरी के चंगुल से छुड़ाने के लिए सभी विधिक उपाय करने का निश्चय बाल शास्त्री, जगन्नाथ शंकरशेठ (आधुनिक मुंबई के शिल्पकार) आदि हिन्दू धर्माभिमानी लोगों ने किया। अपने छोटे बेटे को छुड़ाने की

दृष्टि से शेषाद्रि गोविन्द अन्य तीन–चार ब्राह्मणों को लेकर रे.नेस्बिट के घर गया। लेकिन नेस्बिट ने श्रीपत को फुसलाया था। अतः वह घर आने को तैयार नहीं था। उसका हाथ पकड़कर वहाँ से उसे ले जाने की पिता ने चेष्टा की, लेकिन नेस्बिट ने आपत्ति जताई और उसे जाने नहीं दिया। पिता और उसके साथी खाली हाथ लौट आए। लेकिन इस लड़के का कब्जा लेने के लिए शेषाद्रि गोविन्द के समर्थकों ने 27 अक्टूबर 1843 को सर्वोच्च न्यायालय (तत्कालीन उच्च न्यायालय) में 'हेबियस कॉर्पस' विधि के अंतर्गत पादरियों पर अभियोग दाखिल किया। इस अभियोग के निमित्त बाल शास्त्री जाम्भेकर ने समाचारपत्रों में तथा अन्यत्र श्रीपत की मुक्तता का अभियान चलाया और उस गरीब पिता की सहायता की। अंत में 9 नवंबर 1843 के दिन सर्वोच्च न्यायालय ने श्रीपत का कब्जा उसके पिता को दिया। [2]

लड़का तो छूट गया लेकिन उसने 57 दिन रे.नेस्बिट के घर में रहकर अभक्ष्यभक्षण किया था। उस समय के रूढ़िवादी लोगों का कहना था कि वह भ्रष्ट हो गया, अतः उसे हिन्दू समाज में प्रवेश नहीं दिया जा सकता। मुंबई, पुणे और नासिक के ब्राह्मणवर्ग में श्रीपत के प्रायश्चित और शुद्धि के सम्बन्ध में बहस हुई। महाराष्ट्र में पुणे को वेदविद्या का गढ़ माना जाता था। अतः बड़ी योजकता से बाल शास्त्री ने वहाँ की संस्कृत पाठशाला के प्रमुख वे.शा.सं. मोरशास्त्री साठे, त्र्यम्बकशास्त्री शालिग्राम, चिंतामणदीक्षित आपटे आदि पंडितों की सहमति लेकर श्रीपत को प्रायश्चित करने काशी भेज दिया। एक लड़के की शुद्धि के लिए बाल शास्त्री को उस समय की रूढ़िवादी प्रवृत्तियों से दो वर्ष जूझना पड़ा लेकिन अंत में सफलता प्राप्त हुई। दि. 23 फरवरी 1844 को करवीर पीठ के शंकराचार्य विद्याशंकर स्वामी ने श्रीपत का शुद्धि सम्बन्धी आज्ञापत्र जारी किया। ध्यातव्य है कि श्रीपत को पुनः ब्राह्मण जाति में सम्मिलित किया गया। उसे सरकारी नौकरी मिली और उसका विवाह हुआ। [3]

स्वामी विवेकानंद

स्वामी विवेकानंद (12 जनवरी 1863–4 जुलाई 1902) ने विधर्मियों की शुद्धि का निर्विवाद समर्थन किया। अनेक विधर्मी ईसाइयत या इस्लाम त्यागकर स्वामी जी के शिष्य बने। सेना से अवकाश प्राप्त कॅप्टन जॉन हेनरी सेविए और उनकी पत्नी शार्लट एलिजाबेथ सेविए ने ईसाइयत को छोड़कर अपना पूरा जीवन स्वामी जी के विचार और कार्य को समर्पित किया। 'प्रबुद्ध भारत' मासिक पत्रिका (स्थापना : जुलाई 1896) के प्रथम संपादक बी.आर.राजम अय्यर की आकस्मिक मृत्यु के बाद उसका

दायित्व स्वामी जी ने कॅप्टन सेविए को ही सौंपा था। [4] मायावती (वर्तमान जिला चंपावत, उत्तराखण्ड) के अद्वैत आश्रम की स्थापना में कॅप्टन सेविए का महत्त्वपूर्ण योगदान था। श्रीमती ओल बुल और जोसेफीन इन महिला शिष्यों को स्वामी जी ने अनुक्रम से जया और धीरमाता यह नाम दिए।[5] दि. 25 मार्च, 1898 को उन्होंने मार्गरेट नोबल को 'नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी' होने की औपचारिक दीक्षा देकर उन्हें 'निवेदिता' नाम दिया।[6] सन् 1898 के नैनीताल प्रवास में स्वामी जी की भेंट मुहम्मद सरफ़राज़ हुसैन से हुई जिन्होंने अद्वैत दर्शन को स्वीकार किया था। स्वामीजी के प्रभावी व्यक्तित्व को देखकर वे सहसा बोले, 'भविष्य में यदि किसी ने आप का ईश्वर का अवतार ऐसा वर्णन किया, तो स्मरण रहे कि इस दृष्टि से आप को देखने वाला मैं पहला मुस्लिम हूँ।' वे अपने आप को स्वामी जी का शिष्य समझते थे और उन्होंने 'मुहम्मदानंद' नाम लिया।[7]

रामकृष्ण मिशन (स्थापना : 1 मई 1897) के अभिप्राय और उद्देश्य, नियम और विनियमों की निश्चिती स्वामी जी ने 5 मई 1897 को की। रामकृष्ण मठ एवं मिशन के नियम और विनियमों में से नियम क्र. 20 निम्न है –मुस्लिमों और ईसाइयों को भी हिन्दू समाज में लाने के महान प्रयास किए जाने चाहिए। लेकिन कुछ समय तक उन्हें उपनयन जैसे संस्कार देने की आवश्यकता नहीं। नवंबर 1897 में स्वामी जी ने पंजाब का प्रवास किया। वहाँ सिक्खों ने इस्लाम में मतान्तरितों को शुद्ध करने के लिए 'शुद्धि सभा' की स्थापना की थी, जिसका उल्लेख आ चुका है। स्वामी जी ने उनके इन प्रयासों की सराहना की। [8]

अप्रैल 1899 (क्र. 33, खंड 4) के 'प्रबुद्ध भारत' में स्वामी जी के शुद्धि सम्बन्धी विचार संग्रहित हैं। 'प्रबुद्ध भारत' के इस अंक की मूल अंग्रेजी सामग्री का अर्थ यूँ है – हिन्दू धर्म में मतान्तरितों के प्रश्न पर स्वामी विवेकानंद से साक्षात्कार करने के संपादक के निर्देश से (हमारे प्रतिनिधि लिखते हैं), मुझे एक शाम यह अवसर गंगाजी पर एक हाउज़-बोट की छत पर मिला। रात हो चुकी थी और हम रामकृष्ण मठ के तट-बंध पर रुके थे और वहीं स्वामी जी मुझसे बात करने नीचे आए।... 'मुझे आप से मिलना है, स्वामी', मैंने शुरू किया, 'हिन्दू धर्म से बिछुड़े हुए लोगों का उसमें फिर से लेने के विषय में। क्या आप का अभिमत है कि उनको लिया जाय?'

'अवश्य', स्वामी बोले, 'उन्हें लेना संभव और उचित है।' एक क्षण वे गंभीरता से बैठे, विचार किया और फिर बोलना शुरू हुए। 'इसके अतिरिक्त, हम इसके बिना

संख्या में घट जाएंगे। जब मोहमडन पहली बार आए, कहा जाता है – मुझे लगता है सबसे पुराने मोहमडन इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार हम साठ करोड़ हिन्दू थे। आज हम बीस करोड़ हैं। और फिर, हिन्दू अहाते से बाहर जाने वाला हर व्यक्ति यह मात्र एक व्यक्ति कम नहीं होता अपितु एक शत्रु अधिक हो जाता है।

'इस्लाम और ईसाइयत में भ्रष्ट हुए विशाल बहुमत से तलवार से भ्रष्ट हैं या उनके वंशज हैं। स्पष्ट है कि उन्हें किसी प्रकार से परवश करना अन्यायपूर्ण होगा। क्या तुमने जन्मत: परायों के बारे में कहा? क्यों, अतीतकाल में तो जन्मत: परायों को सामूहिक रूप से (हिन्दू धर्म में) मतान्तरित किया गया है, और वह प्रक्रिया अब भी चल रही है।

'मुझे लगता है कि मेरा यह वचन केवल आदिवासी जनजातियों, बहिर्वर्ती राष्ट्रों, मोहमडन विजय से पूर्व हमारे लगभग सभी विजेताओं पर ही नहीं अपितु पुराणों में विशेष उद्‌गम बताई गईं जातियों पर भी लागू है। अपने मातृ-संघ में स्वेच्छा से वापस आने वाले मतान्तरितों के लिए प्रायश्चित विधियाँ बेशक उचित हैं। लेकिन जो अधीनता के कारण पराये हुए – जैसे कश्मीर या नेपाल में – या जो अजनबी हमसे मिलना चाहते हैं, उन पर कोई प्रायश्चित थोपना नहीं चाहिए।'

'लेकिन स्वामीजी, ये लोग किस जाति के होंगे?' मैंने साहस कर पूछा – 'उन्हें कुछ (जाति) तो चाहिए वर्ना उन्हें विशाल हिन्दू समाज में सम्मिलित करना असंभव है। उनके यथोचित स्थान को हम कहाँ ढूँढेंगे?'

'वापस आने वाले मतान्तरित', स्वामी जी शांति से बोले, 'बिल्कुल, अपनी जाति प्राप्त करेंगे। और नए लोग अपनी बना लेंगे। तुम्हें स्मरण होगा', उन्होंने जोड़ा, 'वैष्णव मत के विषय में यह हो चुका है। भिन्न जातियों से मतान्तरित और पराये सभी उस ध्वज के तले एकत्र हो सके और अपनी एक जाति बना सके और एक बहुत सम्मानित जाति भी। रामानुज से बंगाल के चैतन्य तक, सभी महान वैष्णव आचार्यों ने यही किया है।'

'और ये नए लोग कहाँ विवाह करने की अपेक्षा करें?' मैंने पूछा।

'अपने में, जैसा वे अभी करते हैं', स्वामी जी ने शांति से उत्तर दिया।

'और नाम', मैंने पूछा, 'परायों और अहिन्दू नाम अपनाने वाले भ्रष्टों को नए नाम देने होंगे ऐसा मैं सोचता हूँ। आप उन्हें जातिवाचक नाम देंगे, या फिर?'

'अवश्य', स्वामी जी ने विचारपूर्वक कहा, 'नाम में बहुत कुछ है।' और इस विषय पर वे अधिक न बोले।

लेकिन मेरे अगले प्रश्न से वे खौल उठे। 'आप इन नवागंतुकों को बहुमुखी हिन्दू धर्म में से अपनी धार्मिक मान्यता चयन करने देंगे या उनके लिए उपासना-मत नियोजित करेंगे?'

'तुम यह पूछ भी कैसे सकते हो?' वे बोले। वे स्वयं के लिए चुनेंगे। क्योंकि, व्यक्ति स्वयं के लिए नहीं चुनेगा तो हिन्दू धर्म की आत्मा ही नष्ट हो जाएगी। इष्ट के सम्बन्ध में स्वतंत्रता ही अपनी श्रद्धा का सार है।'

डॉ. बालकृष्ण शिवराम मुंजे

डॉ. बालकृष्ण शिवराम मुंजे (12 दिसंबर 1872- 3 मार्च 1948) शुद्धि आंदोलन के प्रबल समर्थक थे। पं. मदन मोहन मालवीय की अध्यक्षता में 19, 20 अगस्त 1923 को बनारस में हुए अ.भा. हिन्दू महासभा के अधिवेशन का उल्लेख आ चुका है। इस अधिवेशन के लिए नागपुर से प्रतिनिधियों का चयन करने तथा हिन्दू सभा के कार्य के लिए नागपुर में समिति स्थापित करने के लिए डॉ. मुंजे की पहल से 12 अगस्त 1923 को नागपुर के टाउन हॉल में सभा हुई। इस सभा के अध्यक्ष डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार थे। इस अधिवेशन के समय भारत के कई गणमान्य व्यक्तियों ने हिन्दू संगठन, अस्पृश्यता निवारण और मतान्तरण-शुद्धि के बारे में अपने मत व्यक्त किए। इसमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर का मत ध्यातव्य है। उन्होंने कहा, 'राजनैतिक आंदोलन से भी यह आंदोलन अधिक महत्त्वपूर्ण है। हिन्दू समाज को जीवंत रहना है तो उसे पहले स्वयं का बलिष्ठ संगठन निर्माण करना चाहिए। इससे मुसलमान थोड़े शंकालू होंगे लेकिन इस बात की उपेक्षा करनी चाहिए। मुसलमानों ने आंदोलन कर हिन्दुओं को मुसलमान किया, लेकिन हिन्दुओं ने उसमें बाधा नहीं डाली। जो छूट हमने उनको दी, उसे हमें देने में उन्होंने बड़बड़ाहट क्यों करनी चाहिए?' [9]

नागपुर हिन्दू सभा की प्रथम सभा श्री शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि की अध्यक्षता में 11 नवंबर 1923 को टाउन हॉल में हुई। इसकी पहल भी डॉ. मुंजे ने ही की थी। उसी समय देश के अन्य भागों में हिन्दू सभा की शाखाएँ शुरू होने लगी थी। स्थान-स्थान पर शुद्धि सभाएँ भी होने लगी। ऐसी ही एक अ.भा.शुद्धि परिषद् स्वामी श्रद्धानन्द के प्रयत्न से 14 मार्च 1926 को दिल्ली में हुई, जिसके अध्यक्ष डॉ. मुंजे थे। दि. 1, 2 जून 1928 को विदर्भ प्रान्त की द्वितीय हिन्दू परिषद् देउलगाँव राजा में हुई, जिसके अध्यक्ष डॉ. मुंजे थे। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने अस्पृश्यता निवारण और शुद्धि पर बल दिया। इसी परिषद् में पाँच मतान्तरितों को शुद्ध किया गया।

मसुराश्रम द्वारा गोवा में किए गए ऐतिहासिक शुद्धिकरण के बाद पुर्तगाली समाचार पत्रों ने इसका सम्बन्ध राजनीति से जोड़ दिया। इसका बहाना बनाकर पुर्तगाली सरकार ने शुद्धि आंदोलन पर दबाव डालना शुरू किया। परिणामस्वरूप, मार्च 1928 में 400 और गावड़ों की शुद्धि होने जा रही थी, नहीं हो सकी। सरकार ने गोवा के हिन्दू नेता दादा वैद्य, मसुराश्रम के गणपतिबुवा और आनंदमूर्ति जी को बंदी बना लिया। इसका निषेध करने वाला तार डॉ. मुंजे, श्री शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि और विद्यानिधि सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव ने गवर्नर को भेज दिया। मुंबई काउन्सिल के 40 सदस्यों ने भी निषेध पर तार भेज दिए। इसके कारण इन तीनों को मुक्त किया गया।

गोवा के शुद्धिकरण आंदोलन में आई बाधाओं को दूर करने डॉ. मुंजे, मराठी साहित्यकार नरसिंह चिंतामन केलकर, वामनराव नाईक (आर्य समाज, हैदराबाद), जठार और विद्यानिधि सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव ऐसे पाँच सदस्यों का प्रतिनिधि-मंडल दि. 23 मई 1928 को गोवा गया। दि. 26 को प्रतिनिधि-मंडल ने गवर्नर से भेंट की। कुछ बातों के सम्बन्ध में गवर्नर की अनुमति ली गई। लेकिन शुद्धिकृतों का प्रश्न सुलझा नहीं। उनके शुद्धि के पंजीयन के लिए प्रति व्यक्ति रु. 40 का शुल्क घोषित किया गया। यह राशि उन दिनों अधिक होने के कारण पंजीयन का काम रुक गया।[10] अपने पुराने ईसाई नामों का उपयोग करने को उन्हें बाध्य किया गया। मृत्यु के बाद उनका अंतिम संस्कार हिन्दू पद्धति से करना असम्भव होने लगा। कुछ शुद्धिकृतों की संपत्ति राज्यसात की गई। इस समस्या का हल निकालने के लिए पुर्तगाल जाकर वहाँ की सरकार को स्थिति से अवगत कराया जाय ऐसा सुझाव नरसिंह चिंतामण केलकर ने डॉ. मुंजे को दिया। दि. 28 सितंबर 1933 को डॉ. मुंजे लिस्बन पहुँचे। उन्होंने पुर्तगाली गणतंत्र के अध्यक्ष एवं उपनिवेश-मंत्री से भेंट की। इस कार्य में उनकी सहायता इंग्लेण्ड के पुर्तगाल-स्थित राजदूत सर क्लॉड रसेल ने की। लेकिन शुद्धिकृतों का प्रश्न सुलझा नहीं।[11]

जुलाई 1931 में नागपुर में हुए शुद्धि के कई कार्यक्रमों की पहल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार ने की थी।[12] ऐसे ही एक कार्यक्रम का चित्र देखने को मिलता है जिसमें डॉ. हेडगेवार के साथ श्री शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि, श्रीमंत लक्ष्मण राजे भोंसले और डॉ. मुंजे दिखाई देते हैं।[13]

श्री शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि

उन्नीसवीं सदी में शुद्धि आंदोलन को धर्मशास्त्रीय समर्थन देने का कार्य श्री शंकराचार्य

डॉ. कुर्तकोटि (मूल नाम लिंगेश गौड़ा अथवा लिंगन गौड़ा, 1879-1967) ने किया। सन् 1917 में वे संकेश्वर-करवीर (वर्तमान तहसील हुक्केरी, जिला बेलगावी, कर्णाटक) पीठ के शंकराचार्य हुए। देश-काल-परिस्थितिनुसार धर्मप्रचार और सामाजिक पुनर्गठन का काम उन्होंने सन् 1919 से शुरू किया था। सन् 1920 में उनकी प्रेरणा से नासिक में महाराष्ट्र हिन्दू धर्म परिषद् का आयोजन किया गया। सन् 1921 में चातुर्मास मनाने के लिए वे 18 जुलाई को नागपुर पधारे। अगस्त 1921 में हुए मोपला जिहाद से कई धार्मिक और सामाजिक प्रश्न उभरकर सामने आए थे। मलबार में मतान्तरित किए गए हिन्दुओं को उचित प्रायश्चित कराकर पुनः हिन्दू धर्म में सम्मिलित करने की प्रार्थना श्री शंकराचार्य को की जाय इसके लिए डॉ. मुंजे ने 18 सितंबर 1921 को टाउन हॉल में सार्वजनिक सभा आयोजित की। इसके ठीक चार दिन बाद 22 सितंबर 1921 को उसी स्थान के प्रांगण में आयोजित सभा में श्री शंकराचार्य को यह विनती औपचारिक रूप से की गई। 'मलबार यह शृंगेरी शकराचार्य जी के कार्यक्षेत्र में आता है, वे इसके संबंध में योग्य निर्णय करेंगे ही। यह कार्य उस पीठ से न हुआ तो वह करने को मेरी पीठ तैयार है। मलबार की परिस्थिति का अनुमान लगाने के लिए दो-तीन सज्जन पहले वहाँ जाएँ और शृंगेरी शंकराचार्य जी के सामने तथ्य कथन करें' ऐसा सुझाव श्री शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि ने किया। [14]

श्री शंकराचार्य जी के नागपुर-वास्तव्य का लाभ उठाकर मोपला जिहाद से उत्पन्न धार्मिक और सामाजिक प्रश्नों के बारे में धर्मदृष्टि से विचार करने के लिए महाराष्ट्र हिन्दू धर्म परिषद् का द्वितीय अधिवेशन आयोजित किया जाय ऐसा सुझाव डॉ. मुंजे ने रखा। उसके अनुसार 4-5 दिसंबर 1921 को नागपुर के व्यंकटेश थिएटर में यह अधिवेशन हुआ। 'पतित परावर्तन के लिए देवल स्मृति में आधार है। बलात्कार से विधर्मियों की चपेट में आए हुए लोगों का उसमें वर्णित प्रायश्चित देकर पुनः संग्रह किया जा सकता है।' यह निर्णय अधिवेशन में लिया गया। इस प्रकार से डॉ. कुर्तकोटि ने शुद्धि के प्रति अपनी पीठ की सम्मति दी। महाराष्ट्र हिन्दू धर्म परिषद् का तीसरा अधिवेशन श्री शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि की अध्यक्षता में यवतमाल में हुआ। इसमें पतित परावर्तन की प्रायश्चित विधि पुणे के विद्यानिधि सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव ने तैयार की। इसी विधि से बाद में मलबार के मतान्तरित हिन्दुओं को शुद्ध किया गया। प्रत्यक्ष कृति के मार्गदर्शन हेतु इसी अधिवेशन में 'महाराष्ट्र हिन्दू धर्म सभा' गठित की गई, जिसके अध्यक्ष श्री शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि हुए। [15] परधर्म में चले गए लोगों के

शुद्धिकरण के संबंध में चर्चा करने की घोषणा वाराणसी में सनातन धर्म महासभा के प्रवर्तकों ने की। तब वाई (जिला सातारा, महाराष्ट्र) स्थित प्राज्ञ पाठशाला के पं.लक्ष्मणशास्त्री जोशी ने सन् 1928 में 'शुद्धिसर्वस्वम्' नामक संस्कृत निबंध लिखा। शास्त्रविप्लव और समाजहानि दोनों न करते हुए वर्तमान विपत्ति को ध्यान में रखकर पंडितों द्वारा विचार होना चाहिए यह कहकर पं.लक्ष्मणशास्त्री (आगे 'तर्कतीर्थ' उपाधि एवं 'पद्मविभूषण' पुरस्कार विभूषित) ने शुद्धि को प्रोत्साहित किया।[16]

सन् 1923 में श्री शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि ने पुणे के शिवाजी मंदिर में पहला शुद्धिकरण किया। उन्हीं ने अमेरिकी महिला कुमारी मिलर को शुद्ध कर उनका विवाह इंदौर के महाराजा तुकोजीराव तृतीय होलकर से 1928 में करवाया। इसका वर्णन आगे दिया है। दि. 2 अक्टूबर 1937 में हिन्दू महासभा ने यूरोपीय महिला कुमारी अरोहा मोआना हार्डकॅसल को शुद्ध किया। इस शुद्धिकरण की पहल क्रांतिकारी गणेश दामोदर तथा बाबाराव सावरकर ने की थी। शुद्धिकृत महिला को श्री शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि ने आशीर्वाद दिया।[17]

श्री शंकराचार्य कुर्तकोटि और ऊपरोल्लेखित बाल शास्त्री जाम्भेकर जैसे पारम्परिक शिक्षा प्राप्त शुद्धि के और भी पक्षधर महाराष्ट्र में हुए। इनमें विष्णुशास्त्री पंडित, बालशास्त्री रानडे, राजाराम शास्त्री भागवत, वीरश्री शंकर शास्त्री सोमण (जबलपुर) का उल्लेख करना उचित होगा। कश्मीर के मुस्लिमों को हिन्दू धर्म और स्वजाति में प्रवेश दिलाने के लिए शास्त्राधार बालशास्त्री रानडे ने कश्मीर नरेश श्री रणबीर सिंह को दिया था। भारत की पहली महिला डॉक्टर आनंदी गोपाल जोशी के पति गोपाल जोशी ईसाई बने। उनकी शुद्धि का पक्ष राजाराम शास्त्री भागवत ने रखा। वीरश्री शंकर शास्त्री सोमण ने जबलपुर के राजाराम नामक शिक्षक को, जो सकुटुंब ईसाई बने थे, दि. 27 अगस्त 1892 को शुद्ध किया।[18]

स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर

'शुद्धि के सशक्त समर्थक' यह स्वातंत्र्यवीर सावरकर (28 मई 1883 - 26 फरवरी 1966) के बहुआयामी व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। इस पहलू की कई विशेषताएँ बताई जा सकती हैं। वीरजी ने शुद्धि का समर्थन अपने अद्भुत जीवन के विभिन्न कालखण्डों में किया। अत्यंत विपरीत परिस्थितियों में उन्होंने शुद्धि का काम किया। स्वतंत्रता, सामाजिक सुधार, हिंदुत्व और मानवतावाद ये उनके जीवन के प्रेरक तत्त्व थे। इन चारों तत्त्वों से 'शुद्धि' का सम्बन्ध होने के कारण ही शायद वह उनकी

आस्था का विषय था। उनके द्वारा समर्थित अन्य विषयों की भांति उनका 'शुद्धि' विषय में भी सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक योगदान है। लेख, भाषण, नाटक जैसे भिन्न-भिन्न माध्यमों का उपयोग कर उन्होंने शुद्धि का सैद्धांतिक पक्ष रखा। हिन्दू जगाना, हिन्दू बचाना, हिन्दू बढ़ाना और हिन्दू संभालना इन शुद्धि के चारों पहलुओं के सम्बन्ध में उन्होंने कार्य किया। वीरजी ने स्वयं शुद्धि का काम किया ही, साथ में मसुरकर महाराज जैसे अन्य लोगों को भी शुद्धि करने की प्रेरणा दी।

अंडमान के नरकतुल्य 'सेल्युलर जेल' में वीरजी और उनके बड़े भाई गणेश दामोदर तथा बाबाराव सावरकर के द्वारा किया हुआ शुद्धि कार्य बेजोड़ है। वीरजी की 'मेरा आजीवन कारावास' आत्मकथा में 'अंडमान में शुद्धि' नाम का स्वतंत्र अध्याय है। अल्पवयस्क हिन्दू बंदियों को फुसलाकर या अमानवीय यातनाएँ देकर मुस्लिम कारापाल उन्हें कैसे मुस्लिम होने पर बाध्य करते थे इसका वर्णन उस अध्याय में है। मुस्लिम बने हुए ऐसे अनेक बंदियों को बाबाराव एवं वीरजी ने शुद्ध किया। मतान्तरित बंदियों को स्नान करने को कहा जाता और तुलसीपत्र खिलाया जाता। उसके बाद वीरजी गीता या तुलसी रामायण का पाठ करते। गुप्त रूप से बनाया गया प्रसाद वितरित किया जाता और शुद्धिकृतों को उनके हिन्दू नाम से पुकारा जाता। अंडमान में आए सीलोन (श्रीलंका) के एक ईसाई सज्जन को वीरजी ने हिन्दू बनाया। सावरकर बंधुओं द्वारा इस शुद्धि कार्य से सेल्युलर जेल में खलबली मची। बाबाराव पर जानलेवा हमला भी हुआ लेकिन दोनों बन्धु अडिग रहे।

अंडमान से छूटकर वीरजी 8 जनवरी 1924 को रत्नागिरी, महाराष्ट्र पहुँचे। रत्नागिरी जिला छोड़ने तथा राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने का उन पर प्रतिबन्ध था। दि. 23 जनवरी को बाबाराव ने रत्नागिरी हिन्दू सभा की स्थापना की जिसमें वीरजी की महत्त्वपूर्ण प्रेरणा थी। रत्नागिरी हिन्दू सभा की दूसरी सभा में ही ईसाई बने एक सज्जन की शुद्धि का विषय कार्यवाही के लिए लेना चाहिए यह विचार किया गया। दि. 16, 17, 18 मार्च 1924 के नागपुर के 'स्वातंत्र्य' दैनिक (संपादक : डॉ. हेडगेवार) में सिंध की संयोगी जाति के सम्बन्ध में वीरजी के तीन लेख छपे जिनमें उन्होंने हिन्दू नाम और रीतियाँ धारण करने वाली इस मतान्तरित जाति की जानकारी और उसकी शुद्धि के सम्बन्ध में व्यावहारिक सूचनाएँ दी।[19] दि. 17 अप्रैल 1924 को श्रीक्षेत्र परशुराम में दिए गए उनके पहले सार्वजनिक व्याख्यान का विषय 'शुद्धि और अस्पृश्योद्धार' था। स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या से व्यथित होकर सावरकर बंधुओं ने

10 जनवरी 1927 को मुंबई से 'श्रद्धानन्द' साप्ताहिक शुरू किया। अस्पृश्यता-निवारण और शुद्धि का समर्थन करने वाले 'संगीत उः शाप' इस नाटक का लेखन वीरजी ने किया। इसका पहला प्रयोग 9 अप्रैल 1927 को किया गया। वीरजी की हस्तलिखित बही में सम्पूर्ण शुद्धि-विधि लिखी हुई पायी गई जिसमें अत्रि स्मृति का आधार लिया गया था। वीरजी स्वयं एक उत्तम इतिहासकार थे। 'भारतीय इतिहास के छह स्वर्णिम पृष्ठ' इस पुस्तक में उन्होंने इस्लामी शासन-काल में हुए शुद्धि के कई प्रयत्नों का उल्लेख किया है।

वैसे रत्नागिरी में आने के लगभग तुरंत बाद वीरजी ने गुप्त रूप से शुद्धि कार्य शुरू किया था। सन् 1925 से उन्होंने यह काम प्रकट रूप से शुरू किया। सन् 1924 से 1928 अवधि में उन्होंने लगभग 130 अहिन्दुओं की शुद्धि की। दि. 25 मई 1926 को उनके द्वारा की गई आठ सदस्यों के धाक्रस परिवार की शुद्धि की बड़ी चर्चा हुई। यह ब्राह्मण परिवार पन्द्रह वर्षों पहले ईसाई बना था। शुद्धि सम्बन्धी वीरजी के प्रचार से प्रभावित होकर परिवार के मुखिया को लगा कि पूरे परिवार ने फिर से हिन्दू होना चाहिए। यह शुद्धि समारोह बड़ी धूमधाम से रत्नागिरी के विट्ठल मंदिर में हुआ और उसके पश्चात् प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ सहभोज रखा गया। अगले वर्ष जब धाक्रस परिवार की लड़की के विवाह का प्रश्न खड़ा हुआ, तो वीरजी के छोटे भाई डॉ. नारायण राव के एक मित्र ने उससे विवाह किया। स्वयं वीरजी ने कन्यादान किया। धाक्रस परिवार के दो लड़कों के यज्ञोपवीत संस्कार के समय भी वीरजी उपस्थित हुए। स्थानीय लोगों ने इस परिवार का बहिष्कार किया तब वीरजी उनके घर ठहरे। उस समय वीरजी की मासिक आय रु. 60 थी, लेकिन धाक्रस परिवार के इन घरेलू समारोहों में उन्होंने रु. 1013 व्यय किया।[20] मसुराश्रम द्वारा गोवा में किए गए शुद्धिकरण के समर्थन में वीरजी ने रत्नागिरी में निधि-संकलन अभियान चलाया। ध्यातव्य है कि इस निधि में कथित रूप से अस्पृश्य महार जाति ने रु. 37 का योगदान किया।

दि. 21 अगस्त 1955 को पुरी के शंकराचार्य की अध्यक्षता में दादर, मुंबई में 40 मछुआरों का शुद्धिकरण किया गया। वहाँ भाषण करते समय वीरजी ने कहा, 'अपने भारतवर्ष में यह शुद्धि कार्य इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसके लिए मुझे पुनर्जन्म मिले।' दि. 1 अगस्त 1964 में लिखे अपने मृत्युपत्र में वीरजी ने शुद्धि के लिए काम करने वाली संस्थाओं को हर वर्ष आर्थिक सहायता देने के निर्देश दिए।[21]

महाराजा तुकोजीराव तृतीय होलकर का बहुचर्चित विवाह-कई महापुरुषों का एकत्रित प्रयास

शुद्धि के इतिहास में इंदौर के महाराजा सर तुकोजीराव तृतीय होलकर (1890-1978, कार्यकाल 1903-1926 पदत्याग) का अमेरिकन महिला नॅन्सी ॲन मिलर के साथ 1928 में किया गया विवाह विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस विवाह और उसके पूर्व किए गए नॅन्सी ॲन मिलर की शुद्धि को डॉ. मुंजे, शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि, बाबाराव सावरकर, स्वातंत्र्यवीर सावरकर और डॉ. बाबासाहब अम्बेड़कर जैसे महापुरुषों का सक्रिय समर्थन प्राप्त हुआ। इसलिए इस घटना को विस्तार से देना उचित होगा।

महाराजा तुकोजीराव के अमेरिका के वास्तव्य में उनका परिचय सिॲटल निवासी नॅन्सी ॲन मिलर (1907-1995) से हुआ। जब उन्होंने नॅन्सी ॲन मिलर से विवाह करना चाहा, तब इस बात का रूढ़िवादी ब्राह्मणों तथा उनकी धनगर जाति के कुछ लोगों ने विरोध किया।

स्वा. सावरकर ने अपने 'श्रद्धानंद' पत्र में लेख लिखकर (26 जनवरी 1928) मिस मिलर को हिन्दू सभा और आर्य समाज ने अविलंब हिन्दू करना चाहिए ऐसा विचार रखा। महाराजा के मुस्लिम सचिव की इच्छा थी कि वे मुस्लिम बनें। इस आशय की एक सौ शब्दों की तार उसने महाराजा को चेन्नई के निकट कोडिनार में भेज दी। डाक-तार विभाग में नौकरी करने वाले मोघे नाम के सावरकर के एक अनुयायी ने यह तार पढ़ी। यह तार पढ़ी नहीं जाती ऐसा बहाना बनाकर उसने यह तार रोक दी। कुछ दिनों की छुट्टी लेकर मोघे ने यह समाचार मराठी साहित्यकार अच्युतराव कोल्हटकर, डॉ. सुरतकर और बाबाराव सावरकर को बताया। इन लोगों ने महाराजा को दूसरा तार किया जिसमें मिस मिलर को हिन्दू बनाकर यह विवाह संपन्न करने का भरोसा दिलाया गया। महाराजा के नाईक नाम के एक मित्र मुंबई के वांद्रे भाग में रहते थे। वे वांद्रे हिन्दू सभा के अध्यक्ष थे। वांद्रे हिन्दू सभा मिस मिलर को हिन्दू करने को तैयार है, आप मुस्लिम होने की जल्दबाजी न करें ऐसा संदेश नाईक ने महाराजा को भेजा। मिस मिलर को हिन्दू बनाने का अनुरोध बाबाराव सावरकर ने शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि को किया।[22]

महाराजा के इस प्रस्तावित अंतर-धार्मिक विवाह पर पूरे महाराष्ट्र में चर्चा हो रही थी। महाराजा जिस धनगर जाति के थे, उस जाति में भी इस विवाह को लेकर मतभिन्नता थी। इस विषय पर निर्णय करने के लिए इस जाति का सम्मेलन आयोजित

करने का निश्चय हुआ। इस सम्मेलन में उपस्थित होने एवं उसे मार्गदर्शन देने के लिए डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर और रावबहादुर सीताराम केशव तथा बाबासाहब बोले (भंडारी समाज के सदस्य और डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर के सहयोगी) को निमंत्रण दिया गया। दोनों नेताओं ने महाराजा के निर्णय का समर्थन किया। [23] यह सम्मेलन बारामती, महाराष्ट्र में दि. 7 मार्च 1928 को हुआ। वास्तव में यह सम्मेलन आयोजित करने की सूचना डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर ने धनगर समाज के अपने एक अनुयायी हरी पिराजी धायगुडे को की थी। इस सम्मेलन में मिस मिलर का धनगर जाति में समावेश होने का प्रस्ताव संमत हो ऐसी सूचना भी डॉ. बाबासाहब ने दी थी। इसके अनुसार महाराजा के विवाह को समर्थन देकर मिस मिलर का धनगर जाति में समावेश होने की घोषणा समाज द्वारा नियुक्त पंचों ने की।

इन सब प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ कि मिस मिलर को हिन्दू बनाकर धनगर जाति में प्रवेश दिया गया। यह शुद्धि स्वयं शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटि ने की। मिस मिलर का नामकरण 'शर्मिष्ठा देवी' किया गया। राजकुमारी ताराबाई और कर्नल लम्भाटे ने उन्हें विवाह के पूर्व दत्तक लिया। यह शाही विवाह 17 मार्च 1928 को संपन्न हुआ।

डॉ. नारायण भास्कर खरे

भारत को पूर्ण स्वराज्य करने, उसके लिए एक नया संविधान निर्माण करने एवं एक अस्थाई सरकार की स्थापना का लक्ष्य रखकर मार्च 1946 के बाद ब्रिटिश संसद के एक प्रतिनिधि मंडल ने कैबिनेट मिशन योजना बनाई। ब्रिटिश प्रान्तों और देशी राज्यों को मिलाकर एक भारतीय संघ का निर्माण किया जायेगा, प्रान्तों को यह अधिकार दिया जाय कि वे अलग शासन सबंधी समूह बनाएँ, भारतीय संघ में सम्मिलित होने अथवा उससे अलग रहने का निर्णय देशी राज्य स्वयं करेंगे आदि बातें उसमें सुझाई गई थीं। दि. 2 सितंबर 1946 को अस्थाई सरकार स्थापित हुई। मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों के प्रवेश के साथ उसे 25 अक्टूबर 1946 को पुनर्गठित किया गया। मुस्लिम लीग का राजा गजनफर अली खान उस सरकार में स्वास्थ्य मंत्री था। वह पहले अलवर रियासत में राजस्व सचिव था। नवंबर 1946 में उसने आज्ञापत्र जारी किया कि या तो हिन्दू शांति से इस्लाम का स्वीकार करें अथवा चंगेज खान या हलाकू खान के अत्याचारों का सामना करें। लीग के अन्य मंत्री नवाबजादा लियाकत अली खान ने भी भड़काऊ भाषण दिया। हिंसा को बढ़ावा देने वाले लीगी मंत्रियों के निवेदनों के बाद भी नेहरू, पटेल, आज़ाद जैसे कांग्रेसी नेता चुप रहे। इससे क्रूद्ध होकर डॉ. नारायण भास्कर

खरे (1884-1970) ने प्रति-निवेदन देकर उसे प्रकाशित करने के अनुवर्ती प्रयास किए। डॉ. खरे 1937-1938 के बीच मध्य प्रान्त और बरार के प्रेमियर (मुख्यमंत्री) और मई 1943-जुलाई 1946 के बीच वायसरॉय के कार्यकारी मंडल के सदस्य रहे थे। अलवर रियासत के राजा तेजसिंह ने डॉ. खरे के सामने अलवर रियासत का दीवान बनने का प्रस्ताव रखा। अलवर रियासत का उस समय का दीवान मेजर जनरल अब्दुल रहमान था, जो गजनफर अली खान का पिट्ठू था। उसके हाथों में अलवर के हिन्दू कतई सुरक्षित नहीं थे। राजा तेजसिंह की चिंता को समझने के लिए तत्कालीन अलवर रियासत की परिस्थिति को समझना होगा।

ध्यातव्य है कि अलवर और भरतपुर रियासतों में मुस्लिम जनसंख्या 25 प्रतिशत थी। सन् 1932 में अलवर में सत्तर गाँवों में बसे 80000 मेव मुस्लिमों ने विद्रोह किया था। अनेक मंदिरों को मेवों ने नष्ट-भ्रष्ट किया। इस विद्रोह से उनका आत्मविश्वास बढ़ा और उन्होंने 1935 में अ.भा.मेव पंचायत की शाखा अलवर में शुरू की। सन् 1937 में हुए मुहर्रम के जुलूस के बाद मुस्लिमों ने अलवर शहर से 60 किमी दूर बहरोड़ में दंगा किया था। सन् 1932 के मेव विद्रोह के बाद, ब्रिटिशों ने राजा जयसिंह (कार्यकाल 1892-1937) को अपदस्थ किया और प्रशासन की बागड़ोर अपने हाथों ली। उनके उत्तराधिकारी राजा तेजसिंह अननुभवी थे। ब्रिटिशों ने अलवर के 56 अधिकारियों, जो प्रायः हिन्दू थे, के स्थान पर बाहर से मुस्लिम अधिकारी नियुक्त किए। ये प्रायः हिन्दू विरोधी थे। अलवर के प्रशासन में ब्रिटिशों का हस्तक्षेप 1944 तक चला।[24]

दि. 19 अप्रैल 1947 को डॉ. खरे अलवर रियासत के प्रधानमंत्री बने। सन् 1946 से ही मेव लोगों ने अराजकता मचाना शुरू कर दिया था। बाहर से आए मौलाना कुद्दूस जैसे लोगों ने स्थानीय मेवों को और भड़काया। उस समय पाकिस्तान के निर्माण का आंदोलन चल रहा था। पूरा पंजाब पाकिस्तान में जाएगा, मेवात प्रदेश पंजाब से सटा हुआ होने के कारण स्वतंत्र मेवस्तान होने पर उसकी सीमा पाकिस्तान तक जाएगी ऐसा मुस्लिमों का आकलन था। इसलिए वे 'स्वतंत्र मेवस्तान' की माँग को प्रोत्साहन दे रहे थे। मार्च और अप्रैल 1947 में गुड़गांव (गुरुग्राम) के मेवों ने अन्य मुस्लिमों का साथ लेकर दंगा किया। दि. 3 अप्रैल को कुछ मेवों ने अलवर रियासत के तिजारा के पास गंधान गाँव में रियासती सैनिकों और पुलिस पर सशस्त्र हमला किया। इसी प्रकार का हमला मई 1947 को भी किया गया। पाकिस्तान में पश्चिम पंजाब शामिल होगा,

पूर्व पंजाब भारत में रहेगा यह स्पष्ट होने पर स्वतंत्र मेवस्तान की माँग क्षीण होने लगी। दि. 1 जुलाई 1947 को राजा तेजसिंह ने घोषणा की कि अलवर रियासत भारत में विलीन होगा। पड़ोस के भरतपुर रियासत के मेव अलवर में घुसकर दंगे करने लगे। इससे क्रुद्ध होकर हिन्दुओं ने भी उनके विरुद्ध आक्रमण करना शुरू किया। राजपूत, जाट, गुज्जर, अहीर और बनिया जाति के हिन्दू एक हो गए और उन्होंने ईंट का जवाब पत्थर से दिया। लगभग 40-45 हजार मेव मुस्लिमों को हिन्दू बनाया गया ऐसा डॉ. ना.भा. खरे अपने आत्मवृत्त में लिखते हैं।[25]

दि. 12 अगस्त 1947 को अलवर, भरतपुर और गुड़गांव (गुरुग्राम) के 10000 सशस्त्र मेवों पर अलवर रियासत की सेना ने निर्णायक विजय प्राप्त की। अगस्त के अंत तक लगभग सारे मेवों को खदेड़ दिया गया। बहुसंख्य मेव मुस्लिम शरणार्थी शिविरों में चले गए। सन् 1941 में अलवर और भरतपुर में मुस्लिमों की जनसंख्या क्रमशः 26.2 प्रतिशत और 19.2 प्रतिशत थी, दस वर्ष बाद यही जनसंख्या 6 प्रतिशत हुई।[26]

सन्दर्भ -

1) जाम्भेकर, पृ. 545

2) जाम्भेकर, पृ. 493

3) जाम्भेकर, पृ. 551

4) करंदीकर, खंड 2, पृ.430

5) करंदीकर, खंड 3, पृ. 109

6) करंदीकर, खंड 3, पृ. 118-119

7) करंदीकर, खंड 3, पृ. 130

8) करंदीकर, खंड 3, पृ. 95

9) हरदास, पृ.135

10) हरदास, पृ. 224-226

11) हरदास, पृ. 287

12) पालकर, पृ. 235

13) पालकर, पृ. 304 के सामने

14) कोडोलीकर, पृ. 13-14

15) कोडोलीकर, पृ. 14-16

16) पळशीकर,पृ. 76

17) कोडोलीकर, पृ. 16

18) एडिटर देशसेवक. पृ. 15

19) सावरकर, रत्नागिरी पर्व, पृ. 20, 27

20) सालवी, पृ. 4-6

21) सावरकर, सांगता पर्व, पृ. 315

22) सावरकर, रत्नागिरी पर्व, पृ. 164-165

23) कीर, पृ. 105

24) कोपलैंड, पृ. 219-225

25) खरे, पृ. 84-92

26) कोपलैंड, पृ.216-217

उपसंहार

अपने से पराये समाजों को आत्मसात करने की हिन्दू समाज की सुदीर्घ परंपरा है, जिसका धर्मशास्त्रीय आधार है। यवन, शक, हूण, कुषाणादि पराये समाजों को हिन्दू समाज ने आत्मसात किया। लेकिन इन लोगों को विशिष्ट उपासना-मत या पवित्र ग्रन्थ या धार्मिक नेतृत्व होने का कोई प्रमाण नहीं। स्वयं का उपासना-मत ही ग्राह्य और भिन्न मत अग्राह्य, भिन्न मतावलंबियों की हत्या या मतान्तरण पुण्यकारक ऐसा उनका कोई हठधर्मी विचार था इसका भी कोई प्रमाण नहीं। इस्लाम और ईसाइयत की चुनौती भिन्न थी और है। यहाँ हठधर्मिता को दैवी अधिष्ठान है। इस चुनौती के सामने विश्व की अधिकांश सभ्यताएँ टिक न सकी। केवल हिन्दू समाज को कम से कम आठ-दस हजार वर्षों की अक्षुण्ण परंपरा और इतिहास प्राप्त है। हठधर्मी आक्रामकों ने बलपूर्वक मतान्तरण कर देशजों को अपने खेमे में आने को विवश किया। इसका प्रतिकार करने वाले अनेक महापुरुष समय-समय पर अपने देश में हुये। शुद्धिकरण का यह प्रयास इस्लामी आक्रमण के तुरंत बाद शुरू हुआ। सन् 1947 को राजनीतिक स्वतंत्रता-प्राप्ति यह भारत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण पड़ाव था। इस कालावधि में शुद्धिकरण के जो प्रयास हुए, वे आज प्रेरणादायी और पथप्रदर्शक हैं। अपने बिछुड़े हुए बंधुओं को पुन: स्वगृह में आत्मसात करने का जो पुनीत कार्य अपने तेजस्वी पुरखों ने प्रारम्भ किया, उसका यशस्वी समापन करने का दायित्व वर्तमान पीढ़ी का है।

सन्दर्भ-सूची

हिंदी

1. इंद्र विद्यावाचस्पति. (1957). आर्यसमाज का इतिहास, द्वितीय भाग. दिल्ली : सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा.
2. कुणाल, किशोर. (2009). दलित - देवो भव. द्वितीय भाग, नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय.
3. कृष्णदास कविराज. चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ 9 खंड.
4. खुशहालचन्द आनंद (प्रकाशन वर्ष अनुपलब्ध). महात्मा हंसराज : जीवनी तथा जनसेवा की कहानी. नई दिल्ली : डी.ए.वी.पब्लिकेशन्स फाउण्डेशन.
5. गर्ग, श्रीरामकृष्णदेव. (1960). श्रीभक्त मालः भक्ति-रस-बोधिनी-टीका एवं भक्ति-रसायनी टीका सहित, श्रीवृन्दावनधाम : श्रीवियोगी विश्वेश्वर.
6. जोशी, पंडित मोतीलाल (संपा.). (2010). रामानंद सौरभ (निबंध संग्रह), जयपुर : राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन.
7. भारतीय, भवानीलाल. (1987) स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली खण्ड ग्यारह, दिल्ली : श्रद्धानन्द जीवन-कथा, गोविन्दराम हासानन्द.
8. मुंशीराम जिज्ञासु (संपा.)(1914). आर्य पथिक लेखराम. कांगड़ी : गुरुकुल यंत्रालय.
9. रेउ, पं. विश्वेश्वरनाथ. (1938). मारवाड़ का इतिहास प्रथम भाग. जोधपुर : आर्कियॉलॉजिकल डिपार्टमेन्ट.
10. शर्मा, कृष्ण गोपाल. (2011). भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता. भोपाल : मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी.
11. शर्मा, नन्द किशोर. (2002). युगयुगीन वल्लप्रदेश जैसलमेर राज्य का राजनीतिक इतिहास. जैसलमेर : सीमान्त प्रकाशन.

English

1. Amarji R. (1882). Tarikh-i-Sorath A History of the Provinces of Sorath and Halar in Kathiawad Tr from the Persian. Bombay: Thacker and Co.
2. Arnold T.W. (1896). The Preaching of Islam A History of Propagation of Muslim Faith. Westminster: Archibald Constable & Co. Ltd.
3. Basham A.L. (1975). A Cultural History of India. Oxford: Oxford University Press.
4. Bendrey, V.S. (1943). KesavaPandita's Dandanitiprakaranam or Criminal Jurisprudence (XVIIth century).Poona:The Bharat Itihas Samsodhaka Mandala, Poona, Sviya Granthamala, Pustak No. 50.
5. Bhandarkar, D.R. (1989). Some aspects of Ancient Indian Culture. New Delhi: Asian Educational Services.
6. Copeland I. (1998). The Further Shores of Partition: Ethnic Cleansing in Rajasthan 1947, Past and Present, 160, Oxford.
7. Day U.N. (1965). Medieval Malwa A Political and Cultural History 1401-1562. Delhi: Munshiram Manohar Lal.
8. De, B.N. (Tr.). (1939). The Tabaqat-I-Akbari of Khwaja Nizamuddin Ahmad vol 3. Calcutta: Royal Asiatic Society of Bengal.
9. Dutt, J.C. (1898). Kings of Kashmir Being Translation of Sanskrita works of Jonraja, Shrivara, and of Prajyabhatta and Shuka vol III. Calcutta: Elm Press.
10. Elliot H.M., Dowson J. (1867). The History of India, as told by its own historians The Muhammadan Period Vol.I. London: Trubner and Co.
11. Elliot H.M., Dowson J. (1869). The History of India, as told by its own historians The Muhammadan Period Vol.II. London: Trubner and Co.
12. Elliot H.M.,Dowson J. (1871). The History of India, as told by its own historians The Muhammadan Period Vol.III. London: Trubner and Co.
13. Elliot H.M.,Dowson J. (1872). The History of India, as told by its own historians The Muhammadan Period Vol.IV. London: Trubner and Co.

14. Elliot H.M., Dowson J. (1877). The History of India, as told by its own historians The Muhammadan Period Vol. VII. London: Trubner and Co.
15. Fani, M.M. (1843). Dabistan-I Mazahib or School of Manners vol 1, tr. Shea D., Troyer A, 3 vols,. Birmingham: Antioch Gate.
16. Ghai, R.K. (1990). Shuddhi Movement in India. New Delhi: Commonwealth Publishers.
17. Jordens, J.T.F. (1998). Dayananda Saraswati: Essays on His Life and Ideas. New Delhi: Manohar.
18. Jordens, J.T.F. (1978). Dayananda Saraswati: His Life and Ideas. New Delhi: Oxford University Press.
19. Jordens, J.T.F. (1981). Swami Shraddhananda: His Life and Ideas. New Delhi: Oxford University Press.
20. Kane P.V. (1941). History of Dharmasastra Ancient and Medieval Religious and Civil Law Vol. II Part I. Poona: Bhandarkar Oriental Research Institute.
21. Kane P.V. (1953). History of Dharmasastra Ancient and Medieval Religious and Civil Law Vol. IV. Poona: Bhandarkar Oriental Research Institute.
22. Karandikar, V.R. (2005). Swami Vivekananda: The Universal Man (3 vols). Pune: Snehal Prakashan.
23. Keer, D. (1954). Dr. Ambedkar Life and Mission.Bombay: A.V. Keer.
24. King, L. (1903). History and Coinage of Malwa. The Numismatic Chronicle and Journal of the Numismatic Society, 3, pp 356-398.
25. Kulkarni, A.R. (1996). Medieval Maharashtra. New Delhi: Books and Books.
26. Kulkarni, A.R. (1996). Medieval Maratha Country. New Delhi: Books and Books.
27. Majumdar, A.K.(1969). Caitanya His Life and Doctrine: A Study in Vaisnavism. Bombay: Bharatiya Vidya Bhavan.
28. Manucci, N. (1907). Storio do Modor or Mogul India 1653-1708. Vol.3. Tr.Irvine W. London: Royal Asiatic Society.
29. Mehendale, G.B. (2011). Shivaji: His Life and Times. Thane: Param Mitra Publications.

30. Nilkantha Sastri K.A. (1955). History of South India from Prehistoric Times to the Fall of Vijaynagar. London: Oxford University Press.
31. Olivelle P. (2000). Dharmasutras: the Law Codes of Apastamba, Gautama, Baudhayana, and Vasistha. Delhi: Motilal Banarasidass Publishers Private Limited.
32. Parmoo R.K. (1969). A History of Muslim Rule in Kashmir. New Delhi: People's Publishing House.
33. Ralhan O.P. (1997). Hindu MahasabhaVol. 1. New Delhi: Anmol Publications.
34. Sachau, E. (1910). Alberuni's India Vol. II. London: Kegan Paul, Trench, Trubner & Co. Ltd.
35. Sangar, S.P. (1967). Crime and Punishment in Mughal India. Delhi: Sterling Publishers.
36. Sarda, H. (1932). Maharana Kumbha Sovereign, Soldier, Scholar. Ajmer: Vaidik Yantralaya.
37. Sarkar, J (1973). Shivaji and His Times. New Delhi: Orient Longman Ltd.
38. Saxena G.S. (1990). Arya Samaj Movement in India 1875-1947. New Delhi: Commonwealth Publishers.
39. Sharma S.R. (1934). Conversion and Re-conversion to Hinduism during Muslim Rule. Calcutta Review, February, March 1934.
40. Singh, Y.P. (2015). Islam in India and Pakistan, A Religious History. Alpha Editions ebook.
41. Thursby, G.R. (1972). Aspects of Hindu-Muslim Relations in British India. Durham: Duke University thesis.
42. Tod, J. (1920). Annals and Antiquities of Rajasthan or the Central and Western Rajput States of India 3 vols. London: Humphrey Milford Oxford University Press.
43. Utgikar N.B.(1928). Collected Works of Sir R.G. Bhandarkar Vol. 2. Poona: Bhandarkar Oriental Research Institute.
44. Wadekar, M.L. (1997). Devalasmrti-Reconstruction and Critical Study Vol. II. Delhi: Koshal Book Depot.

मराठी

1. एडिटर देशसेवक. (1897). पतितोद्धारमीमांसा. मुंबई : निर्णयसागर मुद्रणालय.
2. कोड़ोलीकर, सदाशिव जनार्दन. (1986). श्रीशंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटी यांचे चरित्र व कार्य. पुणे : काळ प्रकाशन.
3. कांबले, धर्मपाल. (2002). प्रबोधनकार केशव सीताराम ठाकरे : व्यक्तित्व, कार्य, साहित्य. पुणे : प्रेरणा प्रकाशन.
4. खरे, ना.भा.(1956).माझी गेली बारा वर्षे : उत्तरार्ध. मुंबई : ग.म. जोशी प्रकाशन.
5. चित्राव, सिद्धेश्वर शास्त्री. (1927). शुद्धिसंस्कार. पुणे : शंकर रामचंद्र दाते.
6. जाम्भेकर, गणेश गंगाधर. (1950). पश्चिम भारतांतील नवयुगप्रवर्तक आणि आधुनिक महाराष्ट्राचे जनक आचार्य बाळगंगाधर शास्त्री जांभेकर -1812-1846- यांचे जीवनवृत्त व लेखसंग्रह. पुणे : लोकशिक्षण कार्यालय.
7. दाते, शंकर रामचंद्र. (1975). महाराष्ट्र हिंदुसभेच्या कार्याचा इतिहास. पुणे : काळ प्रकाशन.
8. दाते, शंकर रामचंद्र.(1988). श्री. शंकर रामचंद्र दाते यांच्या जीवनातील आठवणी. पुणे : काळ प्रकाशन.
9. दिवेकर, महादेवशास्त्री. (1924). धर्मभ्रष्टांचे शुद्धीकरण आणि शुद्धिसंस्कार. वाई : प्राज्ञ पाठशाला मंडल.
10. पळशीकर वसंत संपा.(1996). तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी व्यक्ती, कार्य आणि विचार.वाई : प्राज्ञ पाठशाला मंडल.
11. पालकर, नारायण हरि.(1998). डॉ. हेडगेवार. पुणे : भारतीय विचार साधना पुणे.
12. बापट, सदाशिव विष्णु.(1925). लोकमान्य टिळक यांच्या आठवणी आणि आख्यायिका (खंड दुसरा). पुणे : सदाशिव विष्णु बापट.
13. सालवी, आत्माराम गणपत. (1976). सावरकरांच्या सहवासात भाग 2 रा. रत्नागिरी: प्रकाशक अनुपलब्ध.
14. सावरकर बालाराव. (1986). वीर सावरकर सांगता पर्व. मुंबई : सावरकर प्रकाशन.
15. सावरकर, बालाराव.(1972). हिंदु समाजसंरक्षक स्वा. वि. दा. सावरकर : रत्नागिरी पर्व. मुंबई : वीर सावरकर प्रकाशन, .
16. हरदास, वीणा बालशास्त्री.(2013). डॉ. बा. शि. मुंजे यांचे चरित्र भाग 2. नागपुर : लाखे प्रकाशन.
17. क्षीरसागर, शंकर धोंडो. (1930). गोमांतक शुद्धीचा इतिहास. मसूर : ब्रह्मचर्याश्रम.

डॉ. श्रीरंग गोडबोले

पुणे-स्थित मधुमेह एवं हॉर्मोन-व्याधि विशेषज्ञ। मधुमेह संबंधी दो पुस्तकों के सह-लेखक। जिहाद, इस्लाम का अंतर-दर्शन, धार्मिक जनसांख्यिकी, बौद्ध-मुस्लिम संबंध, स्वा. सावरकर की शौर्यगाथा आदि विषयों पर मराठी ग्रन्थ। क्रांतिवीर बाबाराव सावरकर का ऑन-लाइन अंग्रेजी चरित्र-लेखन। मूल अभिलेखों पर आधारित 'युगप्रवर्तक डॉ. हेडगेवार' एवं 'दृष्टा संगठक बालासाहब देवरस' इन मराठी ग्रन्थों का संपादन। अनेक समसामयिक सामाजिक विषयों पर प्रासंगिक लेखन। www.savarkar.org और www.golwalkarguruji.org वेबसाइट्स के निर्माण में सहयोग।

अन्य उपासना-मतों में, विशेषकर इस्लाम एवं ईसाइयत में मतान्तरित हिन्दुओं का अपने मूल धर्म और समाज में वापस आने की प्रक्रिया 'घरवापसी' नाम से लोकप्रिय हुई है। इस प्रक्रिया को 'शुद्धि' या 'परावर्तन' भी कहा जाता है। भारत में रहने वाले अधिकांश मुस्लिमों और ईसाइयों के पूर्वज हिन्दू ही थे। किसी समय भय या धोखे से उन्हें मतान्तरित किया गया था। भारत के वर्तमान मुस्लिम और ईसाई इतिहासकाल में बिछुड़े हुए अपने ही बंधुओं की संतान हैं। मतान्तरण यह दासता का आविष्कार है। मतान्तरित व्यक्ति और समाज उस इतिहासकालीन दासता के अवशेष हैं। मतान्तरित बंधुओं को स्वगृह में लाने और उन्हें मातृसमाज में आत्मसात करने का प्रयास इस्लामी आक्रमण के तुरंत बाद शुरू हुआ। अपने ऋषि-मनीषियों ने इस प्रक्रिया को धर्मशास्त्र का आधार दिया। अपने बिछुड़े हुए बंधुओं को आत्मसात करने के प्रयास ऋषियों, साधु-संतों, राजा-महाराजाओं, धार्मिक-सामाजिक-राजनीतिक नेताओं और सामान्य लोगों ने किए। सन् 1947 को राजनीतिक स्वतंत्रता-प्राप्ति भारत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण पड़ाव था। सैकड़ों वर्षों के इस कालावधि में हुए शुद्धिकरण के प्रयासों की तथ्यपरक जानकारी इस पुस्तक में संक्षेप में दी गई है।